

वर्ष-पंचम्  
सितम्बर-2014

ISSN - 2231-1130

# वीथिका

साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं  
समाज विज्ञान की वार्षिक अनुसंधान पत्रिका

— सम्पादक —

मञ्जुल त्रिवेदी

— सह-सम्पादक —

डॉ० रामराजन द्विवेदी  
डॉ० सत्या मिश्रा

पं० रामशंकर त्रिवेदी मेमोरियल शोसायटी  
लखनऊ द्वारा प्रकाशित

# वीथिका

साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं  
समाज विज्ञान की वार्षिक अनुसंधान पत्रिका

- सम्पादकीय कार्यालय -

A-888, सेक्टर-I, आशियाना, लखनऊ

सम्पर्क : 9451346084, 9936466943, 9935330260

E-mail: veethikalko@gmail.com

- मुद्रक -

हिन्दुस्तान ऑफ़सेट

दालमण्डी, सआदतगंज, लखनऊ

- शोध पत्रों/आलेखों में दिए गए विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। तथ्यों की प्रामाणिकता एवं मौलिकता हेतु लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।
- सम्पादक मण्डल सहित समस्त पद पूर्णतः अवैतनिक तथा परिवर्तनीय हैं।
- समस्त न्यायिक परिवादों का क्षेत्र लखनऊ ही होगा।
- किसी भी लेख अथवा लेखांश को प्रकाशित करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है।

— सम्पादक —

मञ्जुल त्रिवेदी

— सह—सम्पादक —

डॉ० रामराजन द्विवेदी

डॉ० सत्या मिश्रा

— सम्पादक मण्डल —

डॉ० अन्जू दत्त

डॉ० आयशा फ़ातमी

डॉ० मालविका रंजन

डॉ० वन्दना संत

डॉ० सन्त प्रकाश तिवारी

मयंक त्रिवेदी

अजीत कुमार सिंह

डॉ० सतीश कुमार सिंह

— विधिक सलाहकार —

अनिल कुमार अवस्थी

(अधिवक्ता, माननीय उ०न्या० इलाहाबाद, ल०ख०पी०)

अतुल कुमार त्रिवेदी

(अधिवक्ता, माननीय उ०न्या० इलाहाबाद, ल०ख०पी०)

## अनुक्रमणिका

क्र०सं०		पृ०सं०
1.	A Study of The Relationship Between Stress And Academic Achievement of Upper Primary Students – Dr. Shravan Kumar/Ankita Singh	11–18
2.	A Study of Impact of Examination Stress on Environmental Attitude of Undergraduate and Post Graduate Students – Aradhana Tripathi	19–22
3.	Building A Classification Model With Logistic Regression on Real Time Big Data Using R, Apache Hadoop, Rhadoop & Apache Flume – Arunendra Mishra	23–28
4.	स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता में सहसम्बन्ध का अध्ययन – रामधनी सिंह / इंदु वर्मा	29–33
5.	“शिक्षा के लोकव्यापीकरण की दृष्टि से चित्रकूट की स्थानीय प्राथमिक शालाओं का अध्ययन” – ओमप्रकाश तिवारी / डॉ० सरोज गुप्ता	34–43
6.	उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन – वीरेन्द्र कुमार रत्नाकर	44–49
7.	संयुक्त परिवार – बदलता परिदृश्य – डॉ० निरूपमा सिंह	50–57
8.	ग्राम्य समाज की सौंदर्यात्मक संस्कृति – डा० सत्या मिश्रा	58–62

क्र०सं०		पृ०सं०
9.	आधुनिक युग में मानव अधिकारों का विकास – गोमतेश्वर पाल	63–72
10.	सामाजिक विकास व पर्यावरण संरक्षण – डॉ कविता कनौजिया	73–75
11.	Right to Information (RTI) Act, 2005: A Key to bring Transparency & Accountability in System. – Dr. S. Mehdi Abbas Zaidi	76–78
12.	महिलाओं की भूमिका निर्वहन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण – डॉ. वन्दना,	79–83
13.	भारतीय सांस्कृतिक वाङ्मय में शिल्प वर्ग – डॉ० सुनीता	84–90
14.	गुप्तकालीन साहित्य तथा कला में नृत्यरत नारियाँ – डॉ० आयशा फ़ातमी	91–100
15.	मौर्य साम्राज्य की स्थापना (323 ई०पू०–185 ई०पू०) एक दृष्टि में – श्वेता सिंह	101–109
16.	साहित्य के प्रांगण में थिरकती हुई गंगा – प्रो० ओम् प्रकाश पाण्डेय	110–114
17.	शिशुपालवध महाकाव्य में वर्णित 'वेदान्तदर्शन' के तत्त्व – प्रदीप नारायण शुक्ल	115–119
18.	महाभारत में रेखागणित (Geometry) – डॉ० पूर्णिमा सिंह राणा	120–127

क्र०सं०

पृ०सं०

- |     |   |         |
|-----|---|---------|
| 19. | संस्कृत वाङ्मय में शासन एवं प्रशासन की अवधारणा : एक विवेचन<br>— डॉ० सन्त प्रकाश तिवारी                        | 128—135 |
| 20. | श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मवाद की अवधारणा<br>— पूजा सिंह  | 136—141 |
| 21. | “वैदिक साहित्य में धार्मिक, आर्थिक एवं स्वतंत्रता का अधिकार”<br>— रोशन सिंह                                   | 142—148 |
| 22. | वैदिक नदियाँ एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनका महत्त्व<br>— पूजा जायसवाल                                      | 149—153 |
| 23. | ‘नव-औपनिवेशिकता एवं हिन्दी-आदिवासी उपन्यास’<br>— योगेन्द्र कुमार सिंह   | 154—164 |
| 24. | Premchand's <u>Karmabhoomi</u> : a Polemical Delineation Of Indian Nationalism And Women<br>— Dr. Arti Dixit  | 165—175 |
| 25. | “छोड़ के प्रेम को कह दो कोई अफ़साना लिखे”<br>— डॉ० संध्या सिंह  | 176—182 |
| 26. | स्त्री-विमर्श का सौन्दर्यशास्त्र<br>— मनोज कुमार सिंह   | 183—194 |
| 27. | तर्पण : समकालीन ग्रामीण संरचना में जातीय उत्पीड़न और जाति संघर्ष का सर्जनात्मक दस्तावेज<br>— सरसिज कुमार सिंह | 195—201 |

क्र०सं०

पृ०सं०

- |     |  |         |
|-----|--|---------|
| 28. | संगीत में ताल का महत्त्व<br>— रूचिरानी गुप्ता                                | 202—208 |
| 29. | भारत में पंचायतीराज व्यवस्था: इतिहास एवं<br>विकास<br>— डॉ मनोज कुमार पाण्डेय | 209—216 |

## सम्पादकीय .....

### ‘हम सफल होंगे’

समाज परिवर्तन के द्वारा ही आदिम अवस्था से वर्तमान—अवस्था तक पहुंचा है। इस तथ्य में लगभग आम राय है कि परिवर्तन सर्वव्यापी है। संसार का प्रत्येक कण प्रति क्षण परिवर्तित हो रहा है। परिवर्तन का यह प्रवाह भूत, वर्तमान और भविष्य में प्रवाहित होता रहता है। मानव, संसार की गति को प्राचीन काल से ही विवेचित करने का प्रयास करता रहा है। विवेचन के इसी क्रम में व्याख्याओं के अनेक स्वरूपों का उद्भव और विकास हुआ।

फ्रांस के दार्शनिक समाजशास्त्री आगस्त कोंत के शब्दों को उधार लें तो ज्यों—ज्यों मानव के “बौद्धिक स्तर” का विकास होता है त्यों—त्यों समाज एक अवस्था से निकल कर दूसरी अवस्था में पहुँच जाता है। कोंत का मानना है कि वर्तमान समय प्रत्यक्ष अवलोकनात्मक बोध का है। जो ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा नियंत्रित दशाओं में सत्यापित और पुनर्सत्यापित किया जाता है। इसी प्रत्यक्ष अवलोकनात्मक बोध को वैज्ञानिक पद्धति के लोकप्रिय संबोधन से जाना जाता है। वैज्ञानिक पद्धति ने समस्या के चुनाव, आनुभाविक अवलोकन, शंका, प्रयोग, तुलना, वस्तुनिष्ठता एवं क्रमबद्धता के व्यवस्थित मार्ग को अपनाया है।

वैज्ञानिक पद्धति मध्यकालीन यूरोप में पुनर्जागरण और ज्ञानोदय जैसी प्रक्रियाओं का उत्पाद है। इसने न केवल परिवर्तन की प्रक्रियाओं को गति प्रदान की बल्कि मानव समाज को आधुनिक अवस्था में स्थापित कर दिया। वैज्ञानिक पद्धति ने प्राकृतिक विज्ञानों के तीव्र विकास को संभव बनाया। भौतिकी—रसायनिकी और प्रौद्योगिकी ने मिलकर कारखाना व्यवस्था को जन्म दिया। कारखाना व्यवस्था ने बड़े पैमाने पर उत्पादन को संभव बनाया, जिससे मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हुई। जैविकी ने शरीर के रहस्यों को समझा जिससे मनुष्य निरोगी और दीर्घ जीवी हुआ।



सामाजिक क्षेत्र में आधुनिकता अनेक रूपों में प्रकट हुई। राजनीतिक क्षेत्र में लोकतन्त्र, मूल अधिकार और व्यक्ति की गरिमा प्रमुख आधुनिक लक्षण थे। बीसवीं शताब्दी में कल्याणकारी राज्य के उद्भव को इसी क्रम में रखा जा सकता है।

आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओं का जन्म प्रमुख आधुनिक गतिविधियाँ थीं। पूँजीवाद ने नई वर्ग व्यवस्था को जन्म दिया। अब बुर्जुआ और सर्वहारा प्रमुख वर्ग थे। इन वर्गों के नियमन के लिए नयी नीतियाँ और व्यवस्थाओं की आवश्यकता थी। एक व्यवस्था के रूप में समाजवाद का उभार एक आधुनिक प्रघटना थी जो 1917 ई० में घटित "बोल्शेविक क्रान्ति" का परिणाम थी। समतावाद पर आधारित समाजवादी व्यवस्था के विकास ने दुनिया को शीतयुद्ध की अवस्था में पहुँचा दिया। 90 के दशक में सोवियत संघ के विखण्डन के साथ संसार शीत युद्ध से मुक्त हुआ और उदारवादी लोकतांत्रिक पूँजीवाद आर्थिक व्यवस्था का एक मात्र विकल्प बचा।

सामाजिक—सांस्कृतिक क्षेत्र में आधुनिकता के प्रभाव ने व्यक्तिवाद को विकसित किया। परिणामस्वरूप समूहवादी संबंध संकट ग्रस्त हो चले। परिवार और विवाह जैसी अवधारणाओं पर विघटन के काले बादल मंडराने लगे। हितप्रधान संबंधों की व्यापकता ने समाज को संवेदनहीन और 'अकेली भीड़' में परिवर्तित कर दिया। सार्वभौमिकता, विशिष्टता, तर्कसंगतता, लौकिकता, अर्जन पर बल (Achievement Motive) सामाजिक—सांस्कृतिक क्षेत्र की अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

वैज्ञानिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप समाज की आधुनिक अवस्था भी मानव के अनेक प्रश्नों को हल नहीं कर सकी। राजनीतिक क्षेत्र में लोकतन्त्र; प्रजातिवाद, संप्रदायवाद, बढ़ती कट्टरता, हिंसा, युद्ध और आतंकवाद जैसे प्रश्नों के हल खोजने में असफल रहा। भारत के संदर्भ में लोकतन्त्र के समक्ष सांप्रदायिकता, जातिवाद, परिवारवाद, भ्रष्टाचार, राजनीति के अपराधीकरण जैसे प्रश्न अनुत्तरित खड़े हैं। कारखाना पद्धति

ने पर्यावरण प्रदूषण, भूमंडलीय तापन और हरित गृह प्रभाव जैसे संकटों को जन्म दिया है। वहीं आर्थिक असमानता और गरीबी जैसे पारम्परिक सवालों के उत्तर भी आधुनिकता और वैज्ञानिक क्रान्ति नहीं खोज सकी है। सामाजिक क्षेत्र में 'लिव-इन-रिलेशनशिप' जैसे संबंधों के स्वरूपों के नामकरण और नियमन की आवश्यकता आ पड़ी है।

वर्तमान के अनुत्तरित सवालों और भविष्य के संकटों के उत्तर क्या प्रत्यक्ष अवलोकनात्मक बोध से संभव है? यह एक यक्ष प्रश्न है। यदि यह इनके हल खोजने में असमर्थ रही तो विकल्प क्या होंगे? आवश्यकता है मिलकर किये जाने वाले सार्थक प्रयासों की। यह आवश्यक नहीं कि हम बड़े-बड़े सिद्धान्त रच डालें और मानवता को तथाकथित रूप से समस्याओं से मुक्त कर दें। तथापि ज्ञान रूपी समुद्र में कतिपय बूदों का विनम्र योगदान किया जा सकता है। 'वीथिका' ज्ञान रूपी समुद्र में यथासंभव योगदान के लिए आमंत्रित करती है और मंच प्रदान करती है। आइए हम सब मिलकर मानवता के समक्ष उत्पन्न प्रश्नों के हल खोजें। आशा ही नहीं विश्वास के साथ कहें कि "हम सफल होंगे।"

मन्जुल बिबि

# **A STUDY OF THE RELATIONSHIP BETWEEN STRESS AND ACADEMIC ACHIEVEMENT OF UPPER PRIMARY STUDENTS**

**\* Dr. Shravan Kumar**

**\*\* Ankita Singh**

## **ABSTRACT**

This study examines the relationship between stress and academic achievement of upper primary students.

The literature available on stress has promptly focused that academic achievement of students are adversely hampered by academic stress, thus this study aimed to investigate the relationship between stress and academic achievement of upper primary students. A total of 200 students of Class VII including both the genders are stratified randomly selected from 5 Govt aided and private schools of Lucknow City.

The instruments included to measure the relationship between stress and academic achievement include students stress scale by Dr. Zaki Akhtar , general classroom achievement test, weighing scale to measure the weight of school bag . Karl Pearsons product moment correlation is the stastical technique employed to study relationship between stress and academic achievement. Findings shows the significant relationship between variable stress and academic achievement .

Key words: Stress , academic achievement

## **INTRODUCTION**

Stress is a state of mental emotional or physical strain resulting from adverse or demanding circumstances, 21<sup>st</sup> Century students are struggling with stress on heels of success. Shirom (1986) study revealed that examination related stresses were formed to be causing high stress followed by classroom assignment overload. In present scenario cut throat competition in field of academics leads students to work hard with more pressure to get grades in examination; this ethos

---

\* Associate Professor,Lucknow University

\*\* Student,M.Ed.Lucknow University

of immense achievement had given birth to academic related stress. Academic stress is product of a combination of academic related demands that exceeds the adaptive resources available to individuals. It is widely acknowledged that a students' academic achievement depend on internal and external factors such as proper study habits, Intelligence , educational aspirations of self & parents , If these situations are not conducive for learning they may lead to academic stress. Gamelch et al (1984) found that sources of stress were decidedly high self expectations.

High stakes learning & performance situation can put a counterproductive stress on students which further can degrade life of students.

The suicidal rates in India regarding failure in examination suggest that students are underhigh academic stress. Clark and Ricker , (1986) ; Felsten and Wilcox, (1992) stress pervades the life of students , and tend to impact adversely their mental and physical health, and their ability to perform school work effectively .On years 2006 5857 students or 16 a day committed suicide across India due to exam stress. These are official figures found in Times of India March 2008.

Many psychiatrists reported that a large numbers of students are suffering from traumatic disorder related to the fear of examination, they are anxious towards the grades in examination. Hodge (1996) also in his study found that prevalence of stress were found particularly among those students who were by their nature prone to anxiety. Students get frustrated from the academic work load. There are various academic stressors such as handling the academic workload, Meeting, deadlines for course assignment ,fear of failing to meet program expectations etc which adversely effects students mental & physical health .

Beside the mental frustrations, it is seen that physical stress also hampers the student's academic achievement with load of schools bags. It is watched in today's aspect that little children carrying too heavy school bags suffer from illness like spondylitis and backbone related problem. Whittfield et al (2000) state that the carriage of heavy school bags, is a suspected contributory factors and therefore represents

an” Overlooked daily physical stress for school children.

For this purpose, the Yash Pal committee report, 1993 first raised concern on weight of school bag. Further in 2008, Ministry of Human resources development issued guidelines which include-

- Not to over prescribe text books for primary classes.
- NO school bag for children of Class I and II allow students to leave bag in school.

In 2010 Kendriya Vidhyala's policy suggest

- School bags for Classes I and II should not weight more than 2 Kg.
- For Classes III and IV the weight of bag students be less than 3 Kg.
- Students of Class V to VIII should not carry bag weighing more than 4 Kg.

As Students with load of heavy bag can develop in him some physical disabilities leads to poor academic performance which leads to stress.

Everyone is observing that school bag of students at primary level is increasing day by day and students are more stressful in their academics life consequently their academic achievement is hampering. Purpose of the present study is to see the relationship between stress and academic achievement of student and relationship with their load of school bags.

### **OBJECTIVES-**

- To study relationship between stress and academic achievement of upper primary students.
- To study relationship between stress and academic achievement in reference to weight of school bag.

### **METHODOLOGY-**

- To comply with objectives of present study, a sample of 200 students of upper primary level class VII studying in Govt aided and private schools affiliated to U.P. board in Lucknow city was selected.
- Tools used to measure the relationship between stress and academic achievement were students stress scale by Dr. Zaki

Akhtar , General Classroom achievement by Dr. A.K. Singh & Dr. (Ms) A Sen Gupta test, weighing scale to measure the weight of school bag.

- Karl Pearson's product moment correlation is the statistical technique employed to study relationship between stress & academic achievement.

**RESULT AND DISCUSSION**

**TABLE NO- 1**  
**COFFICIENT OF CORRELATION BETWEEN STRESS AND ACADEMIC ACHIEVEMENT OF STUDENTS**

SL.NO	VARIABLE	STUDENT	Correlation (r)	LEVEL OF SIGNIFICANT AT 0.1
1 2	STRESS ACADEMIC ACHIEVEMENT	N=200	r=-0.41	SIGNIFICANT

**TABLE NO 1.** Shows the significant relationship between the variable stress and academic achievement of upper primary students at 0.1 level of significance. The variables have low negative correlation between them that is -0.41. Many studies done in related field suggest that students with more stressed behavior show average or poor result in academic achievement. Malik & Balda (2006) also found negative correlation between stress and academic achievement. Negative correlation in respect to these variables means when stress increase academic achievement of students decrease. In present condition various academic stressors such as daily assignment, monthly test, and annual examination may degrade the mental peace of students and create stress in them. Due to stress, mental peace of student may degrade and lack of concentration, in their study anxiety, depression may cause to lower academic achievements..

**OBJECTIVE-2**

To study relationship between stress and academic achievement in reference to weight of school bag.

**TABLE NO- 2**  
**CATEGORIES OF WEIGHT OF SCHOOL BAG**

BELOW IDEAL	BELOW 3.4
IDEAL	3.5 - 4.4
ABOVE IDEAL	ABOVE 4.5

**TABLE NO-2** Shows the three categories of weight below Ideal 3.4, Ideal 3.5 to 4.4 and above Ideal 4.5 of school bag. It is been mentioned in recommendations that Ideal weight of school bag of students of upper primary level class VII should be near 4 Kgs but now a days it is seen that students bags are overloaded with books this create physical stress in students , which further degrade their academic achievement . Thus in respective table weight of school bags of students are divided in three categories below Ideal, Ideal , above Ideal , on basis of these categories in sample of 200 students , students are identified whose bag weight is above 4.5 Kg between 3.5 to 4.4 Kg and below 3.4 Kg then further in each category of students relationship between stress and academic achievement is studied separately.

**TABLE NO- 3**  
**COEFFICIENT OF CORRELATION BETWEEN STRESS AND ACADEMIC**  
**ACHIEVEMENT OF STUDENTS WHOSE WEIGHT OF SCHOOL BAG IS**  
**BELOW IDEAL CATEGORY**

SL.NO	VARIABLE	STUDENT	Correlation (r)	LEVEL OF SIGNIFICANT AT 0.1
1	STRESS	N=36	r=0.1	NOT SIGNIFICANT
2	ACADEMIC ACHIEVEMENT			

**TABLE NO- 3** Shows the relationship between the variables stress and academic achievement is not significant at 0.1 Level., in reference to weight of school bag below 3.4 level . The present finding suggest that students whose backpack load is below Ideal category that may had less muscular pain, spine and neck related problems that cause less stress and less academic achievement.

**TABLE NO-4**  
**COEFFICIENT OF CORRELATION BETWEEN STRESS AND ACADEMIC**  
**ACHIEVEMENT OF STUDENTS WHOSE WEIGHT OF SCHOOL BAG IS**  
**IDEAL CATEGORY**

SL.NO	VARIABLE	STUDENT	Correlation (r)	LEVEL OF SIGNIFICANT AT 0.1
1	STRESS	N=69	r=-0.27	NOT SIGNIFICANT
2	ACADEMIC ACHIEVEMENT			

**TABLE NO- 4** Shows relationship between stress and academic achievement of student is not significant whose weight of

school bag is at Ideal category between 3.5 to 4.4 Level . The correlation between the variable is -0.27 There is low negative correlation between the variables studies suggest that load of school bag is destructive element which creates physical stress which may further lead to fatigue and dullness to complete the academic task frequently and students become backward in terms of studies. Petronell et al, 2006 found that carrying school bag may have an effect on developing spine that result shows deviations posture in the lateral and posterior area. This is major problem find in students now a days . Increase in weight of school bag is one probable causes of developing physical stress which may effect them in academic achievement . Here the low negative correlation suggests that weight of school bag at Ideal category creates less physical stress result less fatigue and dullness consequently less hampering academic achievement.

**TABLE NO-5**  
**COFFICIENT OF CORRELATION BETWEEN STRESS AND ACADEMIC**  
**ACHIEVEMENT OF STUDENTS WHOSE WEIGHT OF SCHOOL BAG IS**  
**ABOVE IDEAL CATEGORY**

SL.NO	VARIABLE	STUDENT	Correlation (r)	LEVEL OF SIGNIFICANCE AT 0.1 LEVEL
1	STRESS	N= 95	r= -0.54	SIGNIFICANT
2	ACADEMIC ACHIEVEMENT			

**TABLE NO- 5**Show relationship between stress and academic achievement of students whose weight of school bag is at above Ideal category 4.5 Kg . The correlation between the variables is -0.54 which is moderate negative correlation. It means the weight of school bag has impact on stress increase , which further leads to decrease in academic achievement . Physical stress may lead students to back gear in studies .

**CONCLUSION-**

- The findings of a present study shows that there is significant relationship between variable stress and academic achievement in total sample of 200 students . There is low negative correlation between the variables.
- The Relationship between the stress and academic achievement in reference to weight of school bag below Ideal



category 3.4 shows insignificant positive correlation and relationship between stress and academic achievement in reference to weight of school bag at Ideal category shows not significant relationship . In case of weight of school bag at above Ideal category shows significant relationship between the stress and academic achievement

### **REFERENCE**

1. Clark , EL. & Ricker , P.P. (1986) differences in relationship and stress of medical and low students Journal of medical Education 61,32 -40.
2. Felsten , G & Wilcox , K. (1992) influences of stress, situation – specific mastery beliefs and satisfaction with social support on well being and academic performance psychological reports , 70,219,303.
3. Gamelch W.H. , Lovrich N.P. and Wilki P.K. , 1984 stress in academic : A natural perspective research in higher education , 20 : 477-490.
4. Hodge , Glenda mae (1996) . Adolescent Anxiety distress and coping : A study of senior school students and higher school certificate examination stress. Dissertation Abstract International , 57, 01-14.
5. Kendriya Vidyalaya Policy (2010) . [http:// www.Cbsenext.com/cbse – topics/cbse-guidelines-on-school-bags-judicious- school-bag-weight-educational-tablets-in-the –future.](http://www.Cbsenext.com/cbse-topics/cbse-guidelines-on-school-bags-judicious-school-bag-weight-educational-tablets-in-the-future)
6. Malik , P & Balda , S. (2006) ,, High IQ adolescent under stress : Do they perform poor in academics ? Anthropologist 8(2) :61-62.
7. Ministry of Human Resources development , (2008) . [https:// groups .google.com/forum/m/#!topic/mvn\\_fbd\\_parents \\_association/a\\_7aEEJadCE.](https://groups.google.com/forum/m/#!topic/mvn_fbd_parents_association/a_7aEEJadCE)
8. Petronell A. Hough , maritte Nel, Janetta E, Smit, Elmarie M, et al. The influence of carrying a school bag on the develop spine . Children care journal 2006, 35(4) :339-348
9. Shirom A. (1986) student stress higher Education , 15: 667-

676.

10. Times of India (2008) . [http://m.times of India.com /India/Around-6000- students –committed-suicide–in-2006/article show/2872298.cms](http://m.timesofindia.com/India/Around-6000-students-committed-suicide-in-2006/article-show/2872298.cms).
11. Whittfield J. Leggs S and Hedderly D. The weight and use of school bags in New Zealand schools. Ergonomics 44(2001) 819-824.

# A STUDY OF IMPACT OF EXAMINATION STRESS ON ENVIRONMENTAL ATTITUDE OF UNDERGRADUATE AND POST GRADUATE STUDENTS

\* Aradhana Tripathi

## *Abstract*

*The present study is an attempt to study of Impact of Examination Stress on Environmental Attitude of Undergraduate and Post graduate Students and find out whether students belonging to different grade differ from one another on examination stress and environmental attitude. The sample for study consisted of 160 undergraduate and postgraduate class students. Examination Stress Scale' and 'Environmental Attitude Scale' prepared by K. S. Misra have been used for the collection of data. t-test and Product Moment Coefficients of Correlation have been computed for analysis of the data. Finding of the study revealed that whether the students studying in undergraduate and postgraduate level, hardly makes any difference in their environmental attitude and there is no significant relationship between environmental attitude and examination stress among undergraduate and postgraduate class students.*

**Key words:** *Examination Stress and Environmental Attitude*

Environmental education is need of the day. Environmental education will make us aware about the environmental problems that are looming over our heads and will equip us with knowledge to overcome these problems. Environmental education will sensitize them towards their environment and develop in them necessary skills and attitudes to work together and individuality for better human-nature relationship. In 1970, the International Union for Conservation of Nature and Natural Resources (IUCN) called an international working meeting of its 'Commission on Education' to discuss and work out environmental education curriculum for schools. The central theme was to evolve an educational process through which an understanding of the connections between human beings, his culture and his bio physical environment is achieved. Supreme Court of Judicature of

\* Research Fellow, Department of Education, University of Allahabad

India has directed the University Grants Commission, New Delhi to implement a compulsory course on environmental studies for undergraduate courses of all branches of higher education.

Denscombe (2000) suggested that examinations are stressful for different reasons. Examination stress is a physiological condition in which people experience extreme stress, anxiety, and discomfort during or before taking an examination. Examination stress is a feeling of distress or agitation and refers to the emotional reactions that some people have to examinations. Examination stress can be caused by lifestyle issues, which includes inadequate rest, poor nutrition and lack of efficient planning of the available time. If students do not schedule the available time, they will not be able to cover the syllabus content at time resulting in stress. Even if they complete reading of full content and no time is left for revision, students may get confused of one content with other resulting in a situation where the student feels as if he knows nothing or forgotten everything.

The present study has been undertaken to compare the awareness of students of undergraduate and postgraduate level. This has to examine whether students differing with respect to their grade level differ in their attitude towards environment and is there any relationship exists between environmental attitude and examination stress.

**Objective:**

Objectives of the present study are as follows-

1. To compare environmental attitude of undergraduate and postgraduate students.
2. To find out relationship between examination stress and environmental attitude.

**Hypotheses:**

The following hypotheses have been tested-

1. There is no significant difference in environmental attitude of undergraduate and postgraduate students.
2. There is no significant relationship between examination stress and environmental attitude.

**Research Design:**

To achieve the objectives of the study correlational survey and causal- comparative methods of research were used.

**Sample:** A sample comprised of 80 undergraduate and 80 postgraduate students of arts faculty of Allahabad University. Multistage random sampling method has been employed for the present study.

**Tool used:** '*Examination Stress Scale*' and '*Environmental Attitude Inventory*' constructed by K. S. Misra have been used for the collection of data.

**Statistics used:** Product Moment Coefficients of Correlation and t- ratio were computed for the analysis of data.

**Results and Discussion:**

**Table 1**

Mean, S. D. and t-ratio showing the difference in environmental attitude among undergraduate and postgraduate students

Groups	N	M	S.D.	t-ratio
Undergraduate	80	23.24	5.65	0.48
Postgraduate	80	23.63	5.70	

Table 1 shows that the value of t-ratio (= 0.48) is not significant at 0.05 level. This means that students of undergraduate and postgraduate class do not differ from one another on environmental attitude. Thus, it can be inferred that whether the students studying in undergraduate and postgraduate level, hardly makes any difference in their environmental attitude.

**Table 2**

Correlation between environmental attitude and examination stress among undergraduate and postgraduate students

Grade Level	N	Correlation
Undergraduate	80	0.84
Postgraduate	80	0.171

Table 2 shows that the value of coefficient of correlation between environmental attitude and examination stress among undergraduate (= 0.84) and postgraduate (= 0.171) class students is not significant at 0.05 level. This means that there is no significant relationship between environmental attitude and examination stress among undergraduate and postgraduate class students.

**References:**

- Denscombe, M. (2000). Social conditions for stress. *British Educational Research Journal*, 26, (3), 259-265.
- Sytnick, K. M. (1985). *Living in the Environment: A Source Book for Environmental Education* (English Translation). Paris: UNESCO.
- UNESCO, (1974). *Report of the Seminar on Environmental Education*. Finish National Commission for UNESCO.

# BUILDING A CLASSIFICATION MODEL WITH LOGISTIC REGRESSION ON REAL TIME BIG DATA USING R, APACHE HADOOP, RHADOOP & APACHE FLUME

\* Arunendra Mishra

## ABSTRACT

This paper encompass of building a classification model with logistic regression on R using open source RHadoop with robust & resilient Apache Hadoop using real time data handling capabilities of Apache Flume. We have integrated Hadoop with Flume to handle real time / streaming big data & used RHadoop to integrate R with HDFS. Then, we used R to build a classification model for log management. The objective of elastic classification model is to classifying logs into relevant & irrelevant. Reason for using streaming data is reduce lag. Time is the most important factor in our world of decision making. As it is said that if we take any correct decision but at inappropriate time; its ultimately INCORRECT.



**Apache Hadoop** is an open source Java framework for processing and querying vast amounts of data on large clusters of commodity hardware. Hadoop enables scalable, cost-

effective, flexible, fault-tolerant solutions. Key components are:

1. Hadoop CORE / COMMON - HDFS, MapReduce, Yarn 2.0
2. Hadoop Essential - PIG, Hive, HBase, Zookeeper, Sqoop,

Mahout

3. Hadoop Incubator - Flume, Ambari, Chuckwa etc



**Apache Flume** is a distributed, reliable, and available system for efficiently collecting, aggregating and moving large amounts of log data from many different sources to a centralized data store.

**EVENT** : An Event is the fundamental unit of data transported by Flume from its point of origination to its final destination. Event is a

\* Consultant - Analytics Management Consulting, KPMG

byte array payload accompanied by optional headers.

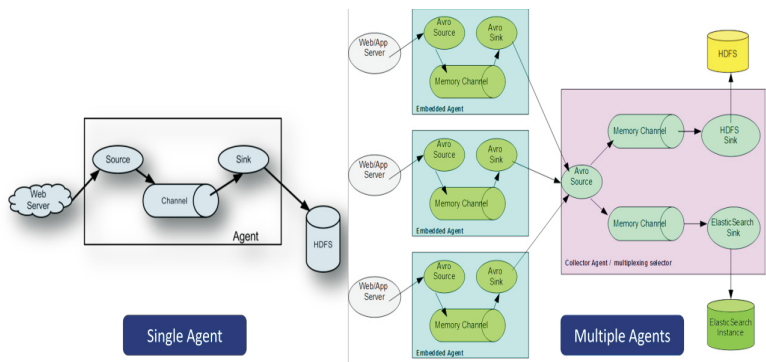
**AGENT** : A container for hosting Sources, Channels, Sinks and other components that enable the transportation of events from one place to another.

**CLIENT** : An entity that generates events and sends them to one or more Agents.

**SOURCE (INCOMING EVENTS)** : An active component that receives events from a specialized location or mechanism and places it on one or Channels.

**CHANNEL (EVENT QUEUE)** : A passive component that buffers the incoming events until they are drained by Sinks.

**SINK (OUTGOING EVENTS)** : An active component that removes events from a Channel and transmits them to their next hop



destination.

### Apache Flume – Typical Aggregation Flow

**R** is a scripting language for statistical data manipulation and analysis. It provides a wide variety of statistical and graphical techniques (linear and nonlinear modeling, statistical tests, time series analysis, classification, clustering, ...). It was inspired by, and is mostly compatible with, the statistical language S developed by AT&T.

**RHadoop** is an open source collection of three R packages created by Revolution Analytics that allow users to manage and analyze data with Hadoop from an R environment.



RHadoop consists of the following packages:

- rmr2 - functions providing Hadoop MapReduce functionality in R
- rhdfs - functions providing file management of the HDFS from within R
- rhbase - functions providing database management for the HBase distributed database from within R

### **Section 1 - Writing Streaming Data Into HDFS: Hadoop Fully distributed**

Prerequisites - Hadoop, R & Flume. We have deployed Hadoop fully distributed mode. Use *JPS* command to check the health of Hadoop setup. Also, we have already deployed Flume. Following is the configuration of Flume conf file. If Hadoop is deployed in pseudo or standalone mode, we need to do few changes in the suggested configuration file.

#### ***# Describe definitions***

```
a1.sources=r1
a1.sinks=hdfs-cluster1-sink
a1.channels=c1
```

#### ***# Describe/configure the source***

```
a1.sources.r1.type=syslogtcp (#specifying type of configuration)
a1.sources.r1.bind=hdfsproxy0 (#specifying source machine)
a1.sources.r1.port=5140 (#specifying port could be any number)
```

#### ***# Use a channel which buffers events in memory***

```
a1.channels.c1.type=memory
a1.channels.c1.capacity=1000
a1.channels.c1.transactionCapacity=100
```

#### ***# Bind the source and sink to the channel***

```
a1.sources.r1.channels=c1
a1.sinks.hdfs-cluster1-sink.channel=c1
a1.sinks.hdfs-cluster1-sink.type=hdfs (# specifying type of sink i.e. here writing data into hdfs)
```

```
a1.sinks.hdfs-cluster1-sink.hdfs.path=hdfs://nn1.bida.loc/user/ubuntu/flume_data
(#above line specifies path of sink machine. mention complete hdfs path)
```

```
a1.sinks.hdfs-cluster1-sink.hdfs.filePrefix = log- (# specifying prefix of file name)
```

```
a1.sinks.hdfs-cluster1-sink.hdfs.fileType = DataStream (# specifying file type)
```

```
a1.sinks.hdfs-cluster1-sink.hdfs.writeFormat = Text (# specifying data format)
```

## **Section 2 - Accessing data from HDFS**

*(#specifying environment variables)*

```
Sys.setenv("HADOOP_CMD"="/home/aronendra/hadoop/hadoop-2.5.0/sbin")
```

```
Sys.setenv("HADOOP_STREAMING"="/home/aronendra/hadoop/hadoop-2.5.0/")
```

```
Sys.setenv("HADOOP_CONF" = "/home/aronendra/hadoop/hadoop-2.5.0/etc/hadoop")
```

```
Sys.getenv("HADOOP_CMD") (# checking that path is correct & updated)
```

*(#Installing required R packages )*

```
install.packages(c("rJava", "Rcpp", "RJSONIO", "bitops","digest", "functional", "stringr", "plyr", "reshape2"))
```

*(# specifying path of libraries already downloaded from CRAN- here I am using my paths )*

```
install.packages("/media/aronendra/RHadoop/rhdfs_1.0.8.tar.gz", repos = NULL, type = "source")
```

```
install.packages("/media/aronendra/RHadoop/rhbase_1.2.1.tar.gz", repos = NULL, type = "source")
```

```
install.packages("/media/aronendra/RHadoop/rmr2_3.2.0.tar.gz", repos = NULL, type = "source")
```

```
install.packages("/media/aronendra/RHadoop/rJava_0.9-6.tar.gz", repos = NULL, type = "source")
```

*(#loading libraries)*

```
library(rhdfs) library(rhbase) library(rmr2)
```

*(#Reading & writing a job on data)*

```
hdfs.data<-file.path(hdfs.root,'data')
```

```
hdfs.out<-file.path(hdfs.root,'out')
```

else, we can write files in logD using this command *hdfs.logD <-*

*file.path(hdfs.root, 'logD')*. Now, we can access hdfs from R console. Here we build a data table "logD" consists of all logs to build a classification model.

### **Section 3 - Building and applying a logistic regression model**

We have introduced a variable " rgroup" to segregate Training & Test sets. The Training dataset is used to build the model, relevant variables are "rgroup", "response", "setlog" & "pred".

```
logTrain <- subset(logD,logD$rgroup>=10)
logTest <- subset(logD,logD$rgroup<10)
logVars <- setdiff(colnames(logD),list('rgroup','log'))
logFormula <- as.formula(paste("log=="log",
paste(logVars,collapse=' + '),sep=' ~ '))
logModel <-
glm(logFormula,family=binomial(link='logit'),data=logTrain)
logTrain$pred <- predict(logModel,newdata=logTrain,
type='response')
logTest$pred <- predict(logModel,newdata=logTest, type='response')
print(with(logTest,table(y=log,glmPred=pred>0.5)))
sample <- logTest[c(7,35,224,327),c('log','pred')]
```

Now, we have build the model. To evaluate this we need to use following tools.

1. CONFUSIONMATRIX <-  
table(truth=logTest\$log,prediction=logTest\$pred>0.5)
2. Useful measures - Accuracy, Precision, Recall, Sensitivity, Specificity

### **References:**

#### Books

- An Introduction to R by The R Core Team:<http://cran.r-project.org/doc/manuals/Rintro.html>
- The R Book by Michael J. Crawley
- R Cookbook by Paul Teetor
- ggplot2: Elegant Graphics for Data Analysis by Hadley Wickham
- Julian J. Faraway - Practical Regression and Anova using R
- Nina Zumel and John Mount - Practical Data Science with R

- An Introduction to Statistical Learning, with Applications in R by James, Witten, Hastie and Tibshirani (Springer, 2013)
- Trevor Hastie and Robert Tibshirani - Stanford  
Statistical Learning

Websites

- <http://www.rproject.org/>
- <http://flume.apache.org/>
- <http://hadoop.apache.org/>
- Rbloggers: <http://www.rbloggers.com/>
- Impetus : Running Map-Reduce jobs in Hadoop with R  
(<http://blogs.impetus.com>)
- <https://www.udemy.com/blog> - R, Hadoop, and How They  
Work Together
- [http://archive.cloudera.com/cdh/3/flume/User Guide](http://archive.cloudera.com/cdh/3/flume/User%20Guide)
- RHadoop and MapR - Revolution analytics & MapR  
Technologies
- <https://github.com/>

## स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता में सहसम्बन्ध का अध्ययन

\* रामधनी सिंह

\*\* इंदु वर्मा

जलवायु परिवर्तन 21वीं सदी की सबसे जटिल चुनौतियों में से एक है। इसके प्रभाव से कोई देश अछूता नहीं है। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी चुनौतियों से कोई देश अकेले नहीं निपट सकता। जलवायु परिवर्तन से होने वाले विकारों से हमें सजग रहने के लिए पर्यावरण बोध का अवश्य ज्ञान रहना चाहिए। जलवायु परिवर्तन का विकास आपदा और निर्धनता से निकट रूप से सम्बन्धित है। सतत् एवं समावेशी विकास में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में इन मुद्दों के समाधान और निराकरण के लिए सृजनशील लोगों को आगे आने की आवश्यकता है जो हमारे सतत् एवं समावेशी विकास को गति देते हुए पर्यावरण में होने वाली विभीषिका को यथा सम्भव कम कर सकें। मानवीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का संतोष विकास प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। देश के अधिकतर लोगों की रोटी, कपड़ा, मकान और रोजगार की आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पा रही हैं तथा देश में निर्धनता और असमानता व्याप्त है जो पर्यावरण और अन्य संकटों के प्रति सदैव संवेदनशील बना है। आज भारतवर्ष में संपोषणीय विकास की दरकार है जिससे सभी की बुनियादी जरूरतें पूरी हों और सभी को बेहतर जीवन की तमन्ना पूरा करने का अवसर मिल सके।

हमें पर्यावरण के प्रति जागरूक होना चाहिए, देश के संसद द्वारा भी समय-समय पर पर्यावरण से सम्बंधित अनेक कानून बनाये गये हैं जिनका हमें बोध होना चाहिए तथा यथासम्भव पालन करना चाहिए। पर्यावरण संरक्षण और वन प्रबंधन के लिए उत्तरदायी भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने जल संरक्षण के लिए सन् 1974 ई0 में जल अधिनियम

\* शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

\*\* सहायक अध्यापिका, बेसिक शिक्षा विभाग, इलाहाबाद।

बनाया। सन् 1981 ई० में वायु प्रदूषण एवं नियंत्रण अधिनियम पारित हुआ। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम सन् 1986 ई० में बना जिसका उद्देश्य पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार था। इसमें पिछला संशोधन सन् 1991 ई० में किया गया। संयुक्त राष्ट्र जैविक विविधता सम्मेलन सन् 1992 ई० के उद्देश्यों को प्राप्त करने के गरज से सन् 2002 ई० में जैविक विविधता अधिनियम पारित किया गया। इसका उद्देश्य जहाँ जैविक विविधता की रक्षा करना है वहीं उससे सम्बंधित ज्ञान का वैज्ञानिक और सुविचारित ढंग से प्रसार करना भी है।

आज स्वच्छ, सुन्दर, समृद्ध एवं प्रदूषण मुक्त भारत के निर्माण में सभी देशवासियों के सक्रिय योगदान की आवश्यकता है। यह आवश्यकता यदि सृजनशील रूप में हो तो कम नुकसान में ज्यादा फायदा मिल सकता है। आज पर्यावरण बोध की जानकारी लगभग सभी नागरिकों की आवश्यकता है जिससे प्रत्येक गांव तथा नगर को प्रदूषण से मुक्त कर भावी भारत का निर्माण कर सकते हैं। सृजनशीलता मनुष्य के बौद्धिक विकास की उच्चतम उपलब्धि के रूप में मानी जाती है। सृजनशीलता के मुख्य अवयव संवेदनशीलता, लचीलापन, प्रवाह, विस्तारण, मौलिकता और समाज द्वारा अनुमोदन है।

राष्ट्रीय रोजगार योजना के अंतर्गत सड़कों तथा स्कूलों का निर्माण, तालाबों का जीर्णोद्धार, बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में नहरों तथा विशाल जलाशयों का निर्माण, रिक्त भूमि तथा उजड़े पर्वतों पर वन वृक्ष वनस्पति का विस्तार, रास्तों, नालियों, सामूहिक शौचालयों, खाद तथा कूड़ा-कचड़ा एकत्र करने के कक्षों तथा बायों-गैस सयंत्रों का निर्माण, सीवर प्रणाली इत्यादि परियोजनाओं का सृजनात्मक रूप से विकास किया जाय तो पर्यावरण प्रदूषण को यथासम्भव कम करते हुए अधिक से अधिक आर्थिक रूप से लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता पर्यावरण बोध और सृजनशीलता के मध्य सहसंबंध का अध्ययन किया है तथा यह देखने का प्रयास किया है कि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य

कैसा सहसम्बन्ध है ?

**अध्ययन के उद्देश्य—**

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये —

1. स्नातक स्तर के छात्रों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना ।
2. स्नातक स्तर की छात्राओं में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना ।
3. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना ।

**अध्ययन की परिकल्पनाएँ —**

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा निम्नलिखित शोध परिकल्पनाएँ बनायी गयी —

1. स्नातक स्तर के छात्रों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सहसम्बन्ध नहीं है ।
2. स्नातक स्तर की छात्राओं में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सहसम्बन्ध नहीं है ।
3. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सहसम्बन्ध नहीं है ।

**अध्ययन की अनुसंधान प्रविधियाँ—**

प्रस्तुत अध्ययन का प्रकार वर्णनात्मक शोध है तथा अध्ययन की विधि सर्वेक्षण विधि है । अध्ययन हेतु इलाहाबाद विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर के कला वर्ग के समस्त विद्यार्थियों को समष्टि के रूप में सम्मिलित किया गया है । न्यादर्श हेतु कला संकाय के 100 विद्यार्थियों ( 50 छात्रों तथा 50 छात्राओं ) को लिया गया है । प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा उपकरण के रूप में स्वनिर्मित पर्यावरण बोध मापनी तथा के. एस. मिश्र द्वारा निर्मित सृजनशीलता परीक्षण का प्रयोग किया गया है । प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा परीक्षण उपकरणों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर गुणनफल

## ●●● वीथिका ●●●

आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया गया है।

### परिणाम एवं विवेचना—

समूह	संख्या	सहसंबंध गुणांक	सार्थकता स्तर
छात्र	50	0.346	सार्थक

प्रस्तुत तालिका-1 से प्रदर्शित है कि परिगणित सहसम्बन्ध गुणांक 0.346 है जो सारणी मान 0.05 सार्थकता स्तर पर 0.273 ( $df=50$ ) से अधिक है अतः सार्थक है अर्थात् स्नातक स्तर के छात्रों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सहसम्बन्ध है। अतः स्नातक स्तर के छात्रों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध है।

समूह	संख्या	सहसम्बन्ध गुणांक	सार्थकता स्तर
छात्रा	50	0.398	सार्थक

प्रस्तुत तालिका-2 से प्रदर्शित है कि परिगणित सहसंबंध गुणांक 0.398 है जो सारणी मान 0.05 सार्थकता स्तर पर 0.273 ( $df=50$ ) से अधिक है अतः सार्थक है। अर्थात् स्नातक स्तर के छात्राओं में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सहसम्बन्ध है। अतः स्नातक स्तर की छात्राओं में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध है।

समूह	संख्या	सहसंबंध गुणांक	सार्थकता स्तर
विद्यार्थी	100	0.302	सार्थक

प्रस्तुत तालिका-3 से प्रदर्शित है कि परिगणित सहसम्बन्ध गुणांक 0.302 है जो सारणी मान 0.05 सार्थकता स्तर पर 0.195 ( $df=100$ ) से अधिक है अतः सार्थक है। अर्थात् स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य सहसम्बन्ध है। अतः स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा सृजनशीलता के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध है।

### निष्कर्ष—

उपरोक्त परिणाम के विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कला वर्ग के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध तथा



सृजनशीलता के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध है अर्थात् विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध को उनकी सृजनशील योग्यता धनात्मक रूप में प्रभावित करती है। अध्ययन से यह पाया गया कि सृजनशील विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध अधिक होता है जिससे भविष्य में पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में सार्थक पहल की उम्मीद की जा सकती है, क्योंकि सृजनशीलता के घटक संवेदनशीलता, लचीलापन, प्रवाह, विस्तारण, मौलिकता और समाज द्वारा अनुमोदित है जो पर्यावरण के सापेक्ष आने वाली विविध समस्याओं को समझने एवं उनके निदान में प्रभावी हो सकते हैं।

**सन्दर्भ –**

1. कुरुक्षेत्र (2012). पर्यावरण विशेषांक; ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार; नई दिल्ली।
2. गुप्ता,एस0पी0 (2008). सांख्यिकीय विधियां. इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन।
3. गुप्ता,एस0पी0 (2009). एडवांस साइकोलॉजी. इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन।
4. परीक्षा मंथन (2013). पर्यावरण विशेषांक; इलाहाबाद।
5. प्रतियोगिता दर्पण (2009). पर्यावरण प्रदूषण; आगरा।
6. लाल, डी0एस0 (2008). जलवायु विज्ञान. इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन।
7. सिंह, सविन्द्र (2009).पर्यावरण भूगोल. इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन।
8. सिंह,ए0के0(2011).मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां. पटना; मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन।
9. योजना (जून 2002). सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार; नई दिल्ली।
10. योजना (मई 2012). सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार; नई दिल्ली।

## “शिक्षा के लोकव्यापीकरण की दृष्टि से चित्रकूट की स्थानीय प्राथमिक शालाओं का अध्ययन”

\* ओमप्रकाश तिवारी

\*\* डॉ० सरोज गुप्ता

### प्रस्तावना :

बच्चों के निर्माण की प्रक्रिया प्राथमिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाती है दिसम्बर 1993 में सर्वाधिक आबादी वाले, सबसे कम साक्षरता वाले देशों का एक शिखर सम्मेलन दिल्ली में हुआ था। इस सम्मेलन में “दिल्ली घोषणा पत्र” तैयार किया गया था। जिसमें यह संकल्प दोहराया गया था कि सभी को सम्पूर्ण साक्षर बनाकर सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त कर लिया जायेगा। नवीन शिक्षा नीति में 14 वर्ष तक की आयु के बालक-बालिकाओं को औपचारिक एवं गैर औपचारिक शिक्षा साधनों से अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के संकल्प को दोहराया गया है तथा यह आशा व्यक्त की गयी कि इस लक्ष्य को पूर्ण करने का पूर्ण प्रयास किया जायेगा।

भारतीय संविधान की 45वीं धारा के अन्तर्गत 6 से 14 वर्ष के समस्त बच्चों को प्रारम्भिक 10 वर्ष के अन्दर अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया था। जिस आधार पर शिक्षा का लोक-व्यापीकरण हो जाना था। परन्तु आज तक शिक्षा के लोकव्यापीकरण का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सका है।

आधुनिक भारत में जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में विकास हुआ है, परन्तु हमारे परम्परागत विचारों में विकास नहीं हुआ। फिर भी वर्तमान में हमारी सरकार शिक्षा के लोकव्यापीकरण हेतु कृत संकल्प है।

वास्तव में शिक्षा जन्म से मृत्युपर्यन्त चलने वाली सहज प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की ज्ञानात्मक तथा कौशलात्मक क्षमताओं का सहज विकास होता है।

आज मानव जीवन की समस्त आधुनिक प्रक्रियाएं लिखित कागजों

\* शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, म.गां.चि.ग्रा.वि. चित्रकूट (म० प्र०)।

\*\* एसोसिएट प्रोफेसर, म.गां.चि.ग्रा.वि. चित्रकूट (म० प्र०)।

से चलती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का साक्षर होना आवश्यक हो गया है। जिससे वह शोषण के विभिन्न प्रपंचों से स्वयं की रक्षा कर मुक्त जीवन जी सके तभी आज के युग की अपेक्षाओं के अनुरूप आगे बढ़ सकता है। साथ ही समाज की प्रगति में सहभागी हो सकता है। महात्मा गांधी ने भी कहा था – “शिक्षा का उद्देश्य है अहिंसक एवं शोषण रहित सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की स्थापना।” अतः समाज के प्रत्येक वर्ग को समुचित अक्षर ज्ञान द्वारा शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है।

नवीन शिक्षा नीति में 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक-बालिकाओं को गैर औपचारिक शिक्षा साधनों से अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का संकल्प दोहराया गया है।

प्राथमिक शिक्षा के लोक-व्यापीकरण का अर्थ है – हर बालक और बालिका यथा संभव और अधिक से अधिक 14 वर्ष की आयु तक कम से कम पांच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा या औपचारिकता के माध्यम से उसके समतुल्य शिक्षा प्राप्त करें और निर्धारित शैक्षिक स्तर भी अर्जित करें।

**प्राथमिक शिक्षा के लिए लोक-व्यापीकरण के उद्देश्य :**

- 6 से 14 वर्ष तक के आयु के समस्त जन समुदाय को गुणवत्ता पूर्वक सार्थक ज्ञान देना। जिससे उनमें जीवनोन्मुखी कौशल का विकास हो सके।
- सामाजिक सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय मूल्यों का संरक्षण एवं संवर्धन हो सके। राष्ट्रीय एकता एवं संप्रभुता को बल मिल सके।
- संवेदनशील मानवीय समाज का निर्माण हो सके।

**अध्ययन विधि :**

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि के आधार पर प्राथमिक शालाओं का अध्ययन किया गया।

**क्षेत्र का परिसीमन :**

क्षेत्र के परिसीमन के लिए प्राथमिक विद्यालयों का सर्वेक्षण प्रपत्र के आधार पर अध्ययन किया गया गया।

**न्यादर्श का निर्धारण :**

प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के अध्ययन के लिए यादृच्छीकरण विधि के आधार पर न्यादर्श के लिए पांच शासकीय तथा पांच अशासकीय विद्यालयों को सर्वेक्षण हेतु चयनित किया गया –

**अ. पांच शासकीय विद्यालयों की सूची :**

शासकीय कन्या पूर्व माध्यमिक विद्यालय, कामता चित्रकूट  
 शासकीय बालक प्राथमिक विद्यालय, कामता चित्रकूट  
 शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय, नयागांव, चित्रकूट  
 शासकीय पूर्व प्राथमिक शाला, लोधन, टिकुरा, चित्रकूट  
 शासकीय हाईस्कूल, पालदेव, चित्रकूट

**ब. पांच अशासकीय विद्यालयों की सूची :**

विद्याधाम पूर्व माध्यमिक विद्यालय, जानकीकुण्ड, चित्रकूट  
 महन्त शत्रुघ्नदास विद्या मन्दिर, केशवगढ़, चित्रकूट  
 महन्त सत्यनारायणदास हाईस्कूल, सन्तोषी अखाड़ा, चित्रकूट  
 श्री वेदान्ती पूर्व माध्यमिक विद्यालय, नयागांव, चित्रकूट  
 महात्मागांधी पूर्व माध्यमिक विद्यालय, प्रमोदवन, चित्रकूट

**वर्गीकरण एवं सारणीयन :**

उपर्युक्त दस विद्यालयों के सर्वेक्षण प्रपत्र के आधार –  
 सारणी संख्या – 1 (अ)

**शासकीय प्राथमिक शालाओं के पंजीकृत छात्रों का विवरण**

क्रं.	विद्यालय का नाम	पंजीकृत छात्रों की संख्या			जाति वर्ग		
		छात्र	छात्राएं	कुल संख्या	सामान्य	ओ.बी.सी.	एस.सी.
1	शासकीय कन्या पूर्व माध्यमिक विद्यालय कामता चित्रकूट	–	242	242	78	91	64
2	शासकीय बालक प्राथमिक कामता चित्रकूट	120	160	120	47	31	4
3	शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय नयागांव चित्रकूट	176	56	336	49	88	199

4	शासकीय पूर्व प्राथमिक शाला लोधन टिकुरा चित्रकूट	37	126	93	04	89	—
5	शासकीय हाईस्कूल पालदेव चित्रकूट	106	—	232	58	103	69

### विश्लेषण :

सारणी से स्पष्ट है कि पांच शासकीय विद्यालयों में पंजीकृत छात्रों की संख्या में विभिन्नता कहीं कम एवं कहीं ज्यादा है केवल एक विद्यालय में पंजीकृत छात्रों की संख्या न्यून है क्योंकि यह विद्यालय एकान्त गांव में है वहां की आबादी भी कम है। छात्रों के विभिन्न जाति वर्ग को भी देखा गया जिसमें अलग-अलग वर्ग के छात्रों की संख्या अलग सभी विद्यालयों में है। केवल एक शासकीय प्राथमिक शाला, लोधन टिकुरा में विद्यालय में जहां छात्र संख्या कम है वहां एस.सी. एवं एस. टी. के छात्र नहीं है।

#### सारणी संख्या - 1 (ब)

#### अशासकीय प्राथमिक शालाओं के पंजीकृत छात्रों का विवरण

क्रं.	विद्यालय का नाम	पंजीकृत छात्रों की संख्या			जाति वर्ग		
		छात्र	छात्राएं	कुल संख्या	सामान्य	ओ.बी.सी.	एस.सी.
1	विद्याधाम पूर्व माध्यमिक विद्यालय जानकीकुण्ड चित्रकूट	—	—	844	—	—	—
2	महन्त शत्रुघ्नदास विद्यामन्दिर केशवगढ़ चित्रकूट	75	35	110	45	15	10
3	महन्त सत्यनारायणदास हाईस्कूल सन्तोषी अखाड़ा चित्रकूट	752	281	1033	652	110	09
4	श्री वेदान्ती पूर्व माध्यमिक विद्यालय नयागांव चित्रकूट	52	29	81	37	11	—
5	महात्मागांधी पूर्व माध्यमिक विद्यालय प्रमोदवन चित्रकूट	64	40	104	28	34	—

### विश्लेषण :

सारणी से स्पष्ट है कि अशासकीय प्राथमिक शाला के पंजीकृत छात्रों की संख्या शासकीय विद्यालयों के पंजीकृत छात्रों की संख्या से अधिक है सबसे अधिक छात्रों की संख्या महन्त सत्यनारायण हाईस्कूल सन्तोषी अखाड़ा चित्रकूट विद्यालय में है। यह विद्यालय घनी बस्ती में भी है।

## ●●● वीथिका ●●●

एक विद्यालय में विद्याधाम पूर्व माध्यमिक विद्यालय में एक साथ छात्रों की संख्या प्राप्त हुई है। अलग छात्रों की संख्या नहीं प्राप्त हो सकी है। शासकीय विद्यालयों की तरह अशासकीय विद्यालयों में भी एस0 सी0 एस0 टी0 के छात्र हैं।

### सारणी संख्या – 2 (अ)

शासकीय प्राथमिक शालाओं के छात्रों से संबंधित गतिविधियों का विवरण

छात्रों को प्राप्त होने वाली छात्रवृत्ति	सरकार द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन	छात्रों की समस्याएं	पाठ्य की सहगामी क्रियाएं
<ul style="list-style-type: none"> <li>• छात्रवृत्ति एस0 सी0 एस0 टी0 के छात्र-छात्राओं को।</li> <li>• परीक्षा प्रोत्साहन</li> <li>• परीक्षा परिणाम के आधार पर प्रवीणता छात्रवृत्ति</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• मध्यान्ह भोजन</li> <li>• निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें</li> <li>• गणवेश</li> <li>• शिक्षण परीक्षा आदि शुल्क</li> <li>से मुक्त</li> <li>• छात्रों को निःशुल्क साइकिल वितरण</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• अभिभावकों द्वारा पर्याप्त सहयोग न मिलना।</li> <li>• बौद्धिक स्तर के आधार पर पाठ्यक्रम न होना</li> <li>• आर्थिक संकट</li> <li>• शिक्षकों द्वारा पर्याप्त सहयोग न मिलना।</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• बालसभा का आयोजन।</li> <li>• राष्ट्रीय पर्व का आयोजन।</li> <li>• वार्षिक उत्सव का आयोजन।</li> <li>• सफाई अभियान का आयोजन।</li> <li>• निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन</li> <li>• अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता का आयोजन।</li> <li>• प्रश्न मंच संबंधी प्रतियोगिता का आयोजन।</li> <li>• खेलकूद, स्काउटिंग का आयोजन</li> <li>• वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन।</li> </ul>

### विश्लेषण :

सारणी से स्पष्ट है कि शासकीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों से संबंधित गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। छात्रों को छात्रवृत्ति भी दी जाती है सरकार की ओर से छात्रों को प्रोत्साहन भी प्राप्त होते हैं। मध्यान्ह भोजन की भी व्यवस्था है। सभी व्यवस्थाओं के होते हुए भी छात्रों की कुछ समस्याएं भी हैं, जैसे शिक्षकों द्वारा पर्याप्त सहयोग न मिलना, आर्थिक संकट, पाठ्यक्रम बौद्धिक स्तर का न होना। अभिभावकों का पूर्ण सहयोग न मिलना।

सारणी संख्या – 2 (ब)

अशासकीय प्राथमिक शालाओं के छात्रों से संबंधित गतिविधियों का विवरण

छात्रों को प्राप्त होने वाली छात्रवृत्ति	सरकार द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन	छात्रों की समस्याएं	पाठ्य की सहगामी क्रियाएं
<ul style="list-style-type: none"> <li>कोई छात्रवृत्ति नहीं</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>कोई प्रोत्साहन नहीं</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>गणवेश की समस्या</li> <li>आवागमन की समस्या</li> <li>छात्रों के पाठ्य पुस्तकों की समस्या</li> <li>मध्यान्ह भोजन की समस्या</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>बालसभा का आयोजन ।</li> <li>राष्ट्रीय पर्व का आयोजन ।</li> <li>वार्षिक उत्सव का आयोजन ।</li> <li>श्रमदान</li> <li>निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन</li> <li>अन्ताक्षरी प्रतियोगिता का आयोजन ।</li> <li>प्रश्न मंच प्रतियोगिता</li> <li>वाद-विवाद प्रतियोगिता</li> <li>खेलकूद, स्काउटिंग, गाइडिंग कबड्डी ।</li> </ul>

**विश्लेषण :**

सारणी से स्पष्ट है कि अशासकीय विद्यालयों में छात्रों को शासकीय विद्यालयों की तरह न तो कोई छात्रवृत्ति प्राप्त होती है न सरकार द्वारा प्रोत्साहन ही प्राप्त है। यद्यपि शासकीय विद्यालयों की तरह अशासकीय विद्यालयों में भी छात्रों से संबंधित सभी गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। अशासकीय विद्यालयों में भी शासकीय विद्यालयों के छात्रों की तरह यहां भी छात्रों की कुछ समस्याएं हैं जैसे गणवेश की समस्या, आवागमन की समस्या, पाठ्यपुस्तकों की समस्या मध्यान्ह भोजन की समस्या।

सारणी संख्या – 3

शासकीय एवं अशासकीय प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों के शैक्षिक योग्यता संबंधी विवरण

शैक्षिक योग्यता	शासकीय		अशासकीय	
	महिला	पुरुष	महिला	पुरुष
प्रशिक्षित स्नातक	01	01	05	17
अप्रशिक्षित स्नातक	01	03	09	10
प्रशिक्षित परास्नातक	02	03	02	04
अप्रशिक्षित परास्नातक	—	03	—	02

**विश्लेषण :**

सारणी से स्पष्ट है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिक योग्यताओं को सर्वेक्षण के आधार पर देखा गया जिसमें शासकीय प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षक कम हैं जिसमें महिलाओं की संख्या न्यून है। जबकि प्रशिक्षित पुरुषों की संख्या अधिक है परन्तु अशासकीय विद्यालयों में प्रशिक्षित महिला पुरुष दोनों है यद्यपि कि प्रशिक्षित महिलाओं की संख्या कम है।

सारणी संख्या – 4 (अ)

शासकीय प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों से संबंधित गतिविधियों का विवरण

कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त शिक्षकों के दायित्व	शिक्षक अभिभावक बैठक	शिक्षकों के वर्ष में होने वाले प्रशिक्षण	शिक्षकों की समस्याएं
<ul style="list-style-type: none"> <li>• अनुशासन संबंधी दायित्व</li> <li>• स्वास्थ्य संबंधी दायित्व</li> <li>• मध्यान्ह भोजन आयोजन</li> <li>• सफाई संबंधी कार्य करवाना</li> <li>• सहायक शिक्षण सामग्री का निर्माण</li> <li>• परीक्षाओं का आयोजन</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• प्रतिमाह बैठक</li> <li>• आकस्मिक बैठक</li> <li>• छात्रों की उपस्थिति बढ़ाने हेतु बैठक</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• सेवाकालीन प्रशिक्षण</li> <li>• गतिविधि आधारित प्रशिक्षण</li> <li>• शिक्षा में गुणवत्ता लाने हेतु प्रशिक्षण</li> <li>• सीखना-सिखाना हेतु प्रशिक्षण</li> <li>• दक्षता आधारित प्रशिक्षण</li> <li>• ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• शिक्षणोत्तर कार्यो के कारण शिक्षण कार्य के लिए पर्याप्त समय न मिल पाना</li> <li>• शिक्षकों के सम्मान की कमी।</li> <li>• वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा उचित निर्देशों का अभाव</li> <li>• प्रतिवर्ष पाठ्यक्रमों का बदलना</li> </ul>



<ul style="list-style-type: none"> <li>• सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन</li> <li>• शासन को समय-समय पर चाही गयी जानकारी देना</li> <li>• जनगणना में सहयोग चुनाव संबंधी जानकारी</li> </ul>			
--	--	--	--

### विश्लेषण :

सारणी से स्पष्ट है कि शासकीय प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों को शिक्षण के अतिरिक्त और भी बहुत से दायित्व है। शिक्षक अभिभावक बैठक भी विद्यालय में होती है। इसके अतिरिक्त शिक्षक समय-समय पर विशेष प्रकार के प्रशिक्षण भी लेते हैं। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि शिक्षकों के अतिरिक्त दायित्व के कारण शिक्षकों को अपने शिक्षण कार्य में कठिनाइयां भी उठानी पड़ती है।

#### सारणी संख्या - 4 (ब)

अशासकीय प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों से संबंधित गतिविधियों का विवरण

कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त शिक्षकों के दायित्व	शिक्षक अभिभावक बैठक	शिक्षकों के वर्ष में होने वाले प्रशिक्षण	शिक्षकों की समस्याएं
<ul style="list-style-type: none"> <li>• प्रार्थना संबंधी व्यवस्था</li> <li>• छात्रों से समाचार प्रस्तुत करवाने की व्यवस्था</li> <li>• जी0 के0 प्रश्न की तैयारी करवाना</li> <li>• बोधवाक्य लिखने में सहयोग करना</li> <li>• कक्षा की व्यवस्था</li> <li>• कार्यालयीन कार्य में सहयोग देना</li> <li>• परीक्षा संबंधी कार्य में सहयोग देना</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• वर्ष में तीन बार बैठक</li> <li>• आकस्मिक बैठक</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• व्यक्तिगत विकास प्रशिक्षण</li> <li>• स्काउट रेडक्रास प्रशिक्षण</li> </ul>	<ul style="list-style-type: none"> <li>• न्यून वेतन के कारण आर्थिक समस्या</li> </ul>

### विश्लेषण :

सारणी से स्पष्ट है कि अशासकीय विद्यालयों में भी शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की भांति शिक्षण के अतिरिक्त अन्य दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है। अशासकीय विद्यालयों में भी शिक्षक-अभिभावक बैठक होती है। अशासकीय विद्यालयों में भी शिक्षकों को शिक्षण के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं परन्तु न्यून वेतन मिलने के कारण उनकी आर्थिक समस्या बनी रहती है। जबकि शासकीय विद्यालयों में वेतन की समस्या न होकर अन्य उत्तरदायित्व अधिक होते हैं।

### परिणाम एवं निष्कर्ष :

- शासकीय विद्यालयों में छात्रों को अध्ययन में रूचि पैदा करने के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गयी है।
- शासकीय विद्यालयों में शिक्षा के प्रति अभिरूचि पैदा करने एवं उनमें प्रतिस्पर्धा का स्तर बनाए रखने के लिए प्रवीणता छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गयी है।
- शासकीय विद्यालयों में गरीबी एवं आर्थिक विवशता से सम्बन्धित भी समस्याएं छात्रों के सामने मुख्य रूप से पायी गयी।
- शासकीय विद्यालयों में शिक्षकों का छात्रों की पर्याप्त सहयोग न मिल पाने की समस्या भी गम्भीर रूप से पायी गयी।
- अशासकीय विद्यालयों में छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था नहीं पायी गयी।
- अशासकीय विद्यालयों में छात्रों की समस्याओं में प्रमुख रूप से आवागमन की व्यवस्था, पाठ्यपुस्तकों एवं मध्याह्न भोजन की व्यवस्था का न होना पाया गया।
- अशासकीय विद्यालयों में छात्रों की पाठ्य सहगामी क्रियाएं उनके व्यक्तित्व निर्माण हेतु शासकीय विद्यालयों के छात्रों की तुलना में अधिक पाए गये।
- अशासकीय विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या शासकीय

विद्यालयों की तुलना में अधिक पायी गयी ।

- शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शैक्षिणेत्तर दायित्व उनके अध्ययन कार्य से अधिक पाए गये ।
- शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की समस्याओं में प्रतिवर्ष पाठ्यक्रमों के बदलने एवं वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा उचित निर्देशन का अभाव प्रमुख है ।

संदर्भ –

1. डॉ. के. मेहता, शिक्षा का सर्वव्यापीकरण
2. डॉ. वी. के. भारती, प्राथमिक शिक्षा : समस्याएँ एवम् समाधान
3. डॉ. एच. आर. कपूर, शिक्षा का लोकव्यापीकरण
4. डॉ० आर. के. शर्मा एवं डॉ. पी. एल. त्यागी, Primary Education ; The Basic Education

## उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन

\* वीरेन्द्र कुमार रत्नाकर

प्रस्तावना:—

भारत एक विशाल देश है। यह एशिया महाद्वीप का एक महत्वपूर्ण उपमहाद्वीप भी है। हमारे देश की ऐतिहासिकता अति प्राचीन है। हमारे देश का चार हजार वर्षों से भी अधिक का गौरवशाली सांस्कृतिक इतिहास है। अनेकता में एकता हमारी मौलिक विशेषता रही है। सांस्कृतिक विविधताओं के कारण भारत का संसार भर में विशिष्ट स्थान रहा है। हमारे देश में विभिन्न जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। भारत की इसी विविधता ने यहाँ एक सहिष्णु एवं आत्मसात करने वाली महान संस्कृति को विकसित किया है।

जातीय विभिन्नता भारतीय संस्कृति की सारभूत एकता है। भारत बहुभाषी लोगों का देश है। प्राचीन भारत में पालि, प्राकृत, मागधी, शूरसेनी, संस्कृत तथा द्रविड़ (तमिल, तेलगू, कन्नड, मलयालम) आदि भाषाओं का विकास हुआ। वैदिककाल में आर्यों की भाषा संस्कृत थी। विभिन्न आक्रान्ताओं के भारत में आगमन से मध्यकालीन भारत में अरबी, तुर्की एवं फारसी भाषा का प्रचलन हुआ। इन भाषाओं के साथ भारत में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं (सिन्धी, पंजाबी, बुन्देलखण्डी, हरियाणवी, बंगाली, मैथिली, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, आसामी एवं उड़िया) आदि का भी पर्याप्त विकास हुआ। चौधरी, (1983), ने "कल्चरल वैरिएबल इन कन्जरवेशन ट्रेनिंग बाई सेल्फ ट्रान्सफारमेशन एण्ड स्क्रीनिंग इन टू कल्चर्स" विषय पर अध्ययन किया। पाण्डे, (1989) ने "ए स्टडी आन द सरस्वती विद्या मंदिर विद रेफरेंस टू द स्टूडेन्ट्स एकेडमिक एचीवमेंट एंड साइको सोशल डेवलपमेंट" विषय पर अध्ययन किया। चतुर्वेदी, (2001) ने "पर्सनाल्टी पैटर्न,

\* शोधछात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

मौरल वैल्यूज एण्ड नेशनल अवेकनिग अमन्ना स्टूडेन्ट्स इन स्कूल ऑफ डिफरेंट कल्चरल एसोसिएशन” विषय पर अध्ययन किया। श्रीवास्तव, आस्थाना (2002) ने “अंग्रेजी माध्यम व हिन्दी माध्यम में पढ़ने वाले किशोरों के आत्म प्रत्यय एवं मूल्यों पर पढ़ने वाले प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन” विषय पर अध्ययन किया। उपरोक्त अध्ययनों से यह निष्कर्ष पाया गया कि हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों में, अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा सार्थक रूप से अधिक सांस्कृतिक ज्ञान रखते हैं।

### अध्ययन की आवश्यकता:—

आज माता-पिता यह चाहते हैं कि हमारा बच्चा संस्कारी हो, सद्गुणी हो, अपनी संस्कृति का सम्मान करे तथा संस्कृति एवं मूल्यों की रक्षा करे लेकिन वर्तमान स्थिति बिल्कुल विपरीत है। बालक शायद स्वयं को ऐसे परिवेश में ढाल नहीं पा रहे हैं और वे अपनी संस्कृति को स्वीकार नहीं करते क्योंकि आजकल हमारी शिक्षा पाश्चात्य संस्कृति का सूचक बनती जा रही है। कहीं इसका कारण शिक्षण संस्थाओं में प्रचलित शिक्षा का माध्यम तो नहीं? भारतीय संस्कृति के समान्तर ही एक और संस्कृति का विस्तार हमारे देश में तीव्रता से हो रहा है। जिसकी झलक हमारे आज के नवयुवकों एवं युवतियों पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। भारत में रहकर यह नवयुवक हमारी संस्कृति को वे महत्व एवं सम्मान नहीं दे पा रहे हैं जो उसे भारत देश का नागरिक होकर देना चाहिए।

### समस्या कथन:—

उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन”

### अध्ययन के उद्देश्य:—

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करना।

2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की छात्राओं के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करना।

**परिकल्पनाएं:—**

**प्रस्तुत शोध के लिए निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है—**

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की छात्राओं के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

**अध्ययन की परिसीमाएं :—**

प्रस्तुत शोध की परिसीमाएं निम्नलिखित हैं—

1. प्रस्तुत शोध में इलाहाबाद के केवल 6 विद्यालयों के छात्र-छात्राओं को सम्मिलित किया गया है।
2. प्रस्तुत शोध में उच्चतर माध्यमिक स्तर के तीन वर्गों (कला, विज्ञान एवं वाणिज्य) के प्रथम एवं द्वितीय वर्ष के छात्र-छात्राओं को सम्मिलित किया गया है।
3. प्रस्तुत शोध में भारतीय संस्कृति ज्ञान के परीक्षण के लिए केवल 100 छात्र-छात्राओं को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया।

### अनुसंधान विधि:—

प्रस्तुत शोध कार्य में अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने सर्वेक्षण विधि का चयन किया है।

### अध्ययन की जनसंख्या:—

प्रस्तुत शोध में उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं को लिया गया है। यू०पी० बोर्ड, सी०बी०एस०ई० तथा आई०सी०एस०ई० विद्यालयों में अध्ययनरत् इनमें तीन वर्गों (कला, विज्ञान तथा वाणिज्य) के छात्र-छात्रायें सम्मिलित किये गये हैं। 100 छात्र-छात्राओं को अध्ययन की जनसंख्या के रूप में लिया गया है।

### न्यादर्श विधि :-

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा यादृच्छिक (Random) न्यादर्श विधि का प्रयोग किया गया है।

### अध्ययन का न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने चयनित विद्यालय के विद्यार्थियों को यादृच्छिक विधि द्वारा 100 छात्र-छात्राओं को चुना।

### अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण:—

उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन के लिए ' भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षण प्रश्नावली' का उपयोग किया गया है।

### प्रयुक्त सांख्यिकी विधियां :

आकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन, मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता और क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया है।

### आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या:—

H<sub>1</sub> - उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के

विद्यालयों के विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

**परिणाम**— आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त प्राप्त परिणाम से हम कह सकते हैं कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों के में भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में सार्थक अन्तर है।

**H<sub>2</sub>** — उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

**परिणाम** :- आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त प्राप्त परिणाम से हम कह सकते हैं कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों में भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में सार्थक अन्तर है।

**H<sub>3</sub>** — उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की छात्राओं के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

**परिणाम** :- आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त प्राप्त परिणाम से हम कह सकते हैं कि हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्राओं के भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान में सार्थक अन्तर है।

**निष्कर्ष :**

भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए :-

1. हिन्दी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों का भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों से अधिक है।
2. हिन्दी माध्यम के छात्रों का भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों से अधिक है।



3. हिन्दी माध्यम की छात्राओं का भारतीय संस्कृति सम्बन्धी ज्ञान अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्राओं की तुलना में अधिक है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:—**

1. गुप्ता, न.ला.(2000), "मूल्य परक शिक्षा", अजमेर: कृष्णा ब्रदर्स प्रकाशन, पृ.क्र. 31-22.
2. टिकरिहा, सं. (1993), "उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं में मानवीय मूल्यों के प्रतिस्थापन हेतु किये जा रहे प्रयासों का समीक्षात्मक अध्ययन", लघु शोध प्रबन्ध, पंडित रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर।
3. बत्रा, दी.ना. (1991), "शिक्षा का भारतीय करण," लखनऊ: विद्याभारती प्रकाशन, पृ.क्र. 11-15.
4. भारत सरकार, (1985), "शिक्षा की चुनौती". दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, पृ.क्र. 10.
5. भारत सरकार, (1986), "राष्ट्रीय शिक्षा नीति," नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) मई, पृ.क्र. 1-10.
6. एण्डरसन, ए.एल.(1966), "पर्सनल एण्ड सिचुएशनल फैक्टर्स अफेक्टिंग द च्वाइस बेटवीन कॉलेज एण्ड सेकेण्डरी टीचर्स ऑफ डिफरेंट सबजेक्ट एरियाज," जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च. 60 (2)

## संयुक्त परिवार - बदलता परिदृश्य

\* डॉ० निरूपमा सिंह

भारतीय समाज में प्राचीन काल से संयुक्त परिवार एक ऐसी संस्था है जिसमें विभिन्न स्तर के व्यक्तियों का समुदाय न केवल एक साथ रहता है, वरन् वह दूसरे के साथ आत्मीयता के सूत्र में बँध कर अपने-अपने कर्तव्यों और अधिकारों की आचार-संहिता का भी परिपालन करता है। संयुक्त परिवार में सदस्यों के पारस्परिक प्रेम और सहयोग तथा उनके पारस्परिक त्याग और बलिदान की भावना पर ही परिवार के सदस्यों की उन्नति निर्भर करती है। संयुक्त परिवार में मुखिया परिवार के सभी सदस्यों का ध्यान रखता है, यदि कोई सदस्य व्यसनी, स्वार्थी अथवा संकीर्ण मनोवृत्ति का हो गया हो तो उसे प्यार या फिर सख्ती से समझा-बुझाकर सही रास्ते लाने में मुखिया अपने सारे अनुभव का उपयोग करता है। फलस्वरूप वह पारिवारिक सदस्य, समाज के लिए कठिनाई नहीं उत्पन्न कर पाता। संयुक्त परिवार एक पवित्र संस्था है जो सभी छोटे-बड़े सदस्यों के हितों को ध्यान में रखते हुए, समाज तथा राष्ट्र की उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

समाजिक परिवर्तन एक अनिवार्य सामाजिक प्रक्रिया है जो समस्त विश्व में व्याप्त है। भारत भी नवीन परिवर्तनों से अछूता नहीं है भारतीय समाज में भी औद्योगीकरण, शिक्षा के प्रसार, शहरीकरण, नवीन प्रौद्योगीकरण, जनसंचार के साधनों में वृद्धि, भूमि सुधार आदि के कारण व्यापक परिवर्तन हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन के कारण भारतीय संयुक्त परिवार में भी परिवर्तन आये हैं। संयुक्त परिवारों की दशा इन दिनों बड़ी ही दयनीय हो गई है वे शनैः-शनैः बिखरते और क्षीण होते जा रहे हैं। ये विखण्डन सामाजिक परिवर्तन के चक्र का एक चरण है— आदिम युग में इन्सान अकेले रहता था फिर उसने झुंड में रहना सीखा इन्सान उसके अगले चरण में उसने परिवार बनाया और जब कृषि कार्यों में उसे श्रम शक्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई तभी संयुक्त परिवार का उदय हुआ।

\* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी०ए०वी०पी०जी० कॉलेज, लखनऊ

अब आज कल अनेक कारकों जैसे—तकनीकी विकास, शिक्षा के प्रसार, संचार साधनों इत्यादि की उपलब्धता के कारण संयुक्त परिवार विखण्डित होकर मूल परिवार में बदल रहे हैं। यही मूल परिवार कालांतर में संयुक्त परिवार में बदल जाते हैं। यह सत्य है की आज के संयुक्त परिवार में वे मूल्य नहीं पाये जाते जो प्राचीन भारतीय सभ्यता के प्रतीक थे। आज पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव में आकर संयुक्त परिवार में छल, ईर्ष्या—द्वेष तथा पारस्परिक भेदभाव की भावना बढ़ी है।

यद्यपि संयुक्त परिवार प्रथा हर दृष्टि से उचित और लाभदायक हैं किन्तु कुछ कारणों की वजह से इस प्रथा का हास होता जा रहा है जैसे—भारत में प्राचीन काल में कृषि की प्रधानता थी। जजमानी प्रथा का समाज में प्रचलन था, किसी भी सेवा के बदले अनाज दिया जाता तथा किसी भी आवश्यकता की वस्तुओं का आदान—प्रदान भी अनाज के माध्यम से ही होता था। ब्रिटिश काल में जब नवीन नौकरियों का सृजन किया गया तो मुद्रा का प्रचलन बढ़ने लगा तब शिक्षित लोगो ने संयुक्त परिवार से बाहर जाकर सुदूर क्षेत्रों में नौकरियों की तलाश शुरू कर दी परन्तु वे तब भी भावनात्मक रूप से अपने परिवार से जुड़े रहे। शिक्षा का बढ़ता प्रसार, जनसंचार क्रान्ति और पाश्चात्य मूल्यों के प्रभाव में धर्म के बंधन ढीले हो रहे हैं। अब व्यक्ति धार्मिक नियमानुसार अच्छे—बुरे कर्मों का आकलन नहीं करता बल्कि व्यक्तिगत खुशी के आधार पर गलत और सही कार्यों का निर्धारण कर रहा है एवं अपने जीवन को यथार्थ के अनुसार व्यतीत कर रहा है जिससे संयुक्त परिवार का अपने सदस्यों पर नियन्त्रण हट रहा है। इसी प्रकार मुद्रा के बढ़ते प्रचलन ने जजमानी प्रथा को भी नुकसान पहुँचाया जिससे विभिन्न सेवा क्षेत्रों में लगे लोगों को भी अपने क्षेत्रों से पलायन करना पड़ा जिसका प्रभाव संयुक्त परिवार की अखण्डता पर पड़ा।

ब्रिटिश काल के दौरान जब भारत में भूमि सुधार नियमों के द्वारा जमींदारी प्रथा को खत्म कर दिया गया और प्रत्येक किसान के पास भूमि धारण करने की सीमा निश्चित कर दी गई जिसके फलस्वरूप अधिकतर

संयुक्त परिवारों के मुखियों ने जिनके पास बड़ी संयुक्त भूमि थी उसे उन्होंने अपने परिवार के अन्य सदस्यों के नाम कर दी जिसके परिणामस्वरूप सदस्यों में व्यक्तिवाद की भावना पनपने लगी और कलांतर में वे अपनी-अपनी भूमि के बल पर परिवार से पृथक होते गये जिससे संयुक्त परिवार में विखण्डन शुरू हो गया आधुनिक काल में जजमानी प्रथा के खत्म होने तथा नवीन उद्योगों जैसे मिल, कारखाने खुलने से प्राचीन व्यवसायों पर प्रभाव पड़ा जो सेवा करने वाली जातियाँ थी वे जब इन मिल कारखानों में कार्य कर के अधिक धन व सम्मान प्राप्त करने लगीं तो अपने गाँव से अपने परिवारों को भी शहर में बुलाने लगी और अपने पुश्तैनी धन्धो को छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए नवीन क्षेत्रों में जाकर बसने लगी जिसके फलस्वरूप इनके संयुक्त परिवारों में भी विखण्डन शुरू हो गया।

भारत में हुई सूचना क्रांति ने भी संयुक्त परिवार के विघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है—जनसंचार के बढ़ते उपभोग ने भारतीय संस्कृति के मूल्यों की नींव को हिला दिया है पहले संयुक्त परिवारों में परिवार के सदस्य एक साथ बैठकर अपने सुख-दुख आपस में बांट लेते थे। अब अगर किसी के पास समय है भी तो वह या तो टेलीविज़न या फिर मोबाइल पर ही व्यस्त रहता है। आपसी संवाद बहुत कम होता है जिसका प्रभाव सम्बन्धों पर पड़ता है। मीडिया की चमक-दमक से प्रभावित व्यक्ति अधिक से अधिक धर्नाजन कर सबसे अमीर व्यक्ति बन जाना चाहता है जिसके लिए यदि उसे अपने परिवारिक सदस्यों को भी छोड़ना पड़े तो भी पीछे नहीं हटता, परिणाम-स्वरूप संयुक्त परिवारों में विघटन बढ़ता जा रहा है। विभिन्न वर्गों में स्त्रियों की बढ़ती हुई शैक्षिक स्थिति के कारण उनमें आत्मनिर्भरता आयी है आज महिलायें अपने कार्य-कौशल के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में निपुणता के साथ कार्य का संपादन कर रही हैं स्त्रीयाँ अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो गयी है जिस वजह से वे अपने सास-ससुर तथा परिवार के अन्य सदस्यों के साथ अच्छे सम्बन्ध तो रख रही हैं परन्तु उनके द्वारा बनाये गये किन्ही नियम-आडम्बरों का बिना सोचे

समझे अनुसरण करने को तैयार नहीं होंगी परिणामस्वरूप परिवारिक एकता में परिवर्तन हो रहा है।

आधुनिक भारत में औद्योगीकरण के विकास के फलस्वरूप जो परिणामी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। उसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों से लोग औद्योगिक क्षेत्रों की ओर पलायन कर संग्रहीत हो गये। जिसके कारण औद्योगिक क्षेत्रों में विशिष्ट परिवारिक संरचनाएँ उत्पन्न हुईं। जैसे—कि गाँव से जब एक व्यक्ति नगर में हुए औद्योगिक विकास में अपने श्रमदान के लिए गया तो उसे वहाँ अपने ग्रामीण जीवन की अपेक्षा अच्छा जीवकोपार्जन मिला फलस्वरूप श्रमशक्ति की पूर्ति हेतु अगली बार वह अपने बन्धु—नातेदार तथा गाँव के लोगों को भी साथ ले गया। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्रों ने विशिष्ट प्रकार के संयुक्त परिवारों का सृजन किया जिसके सदस्य स्वेच्छा से परिवारिक संबंधों का पालन करते हैं और वे किसी प्रकार के परिवारिक नियमों में अपने को आबद्ध नहीं मानते हैं और आजकल पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव में आकर एकाँकी परिवारों को हम विशेष महत्व देने लगे हैं जिससे परिवार में छल, छद्म ईर्ष्या—द्वेष तथा पारस्परिक भेदभाव की भावना बढ़ी है परिणाम स्वरूप सामाजिक मूल्यों का ह्रास हुआ है जिससे परिवार की आधारभूत भावनाओं को क्षति पहुँची है और परिवार की एकता, अखण्डता एवं समरसता प्रभावित हुई है।

आधुनिकीकरण के द्वारा व्यक्ति के साथ ही समाज एवं उसकी प्रत्येक इकाई विकासशील प्रक्रिया से गुजरती है और इस परिवर्तन के दौरान कई बार विभिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं परिणाम स्वरूप समाज को उससे उत्पन्न होने वाले संकट से जूझना पड़ता है। आधुनिकीकरण के परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार अपना मूलरूप खोते जा रहे हैं आज के आधुनिक समय में व्यक्ति परिवार से ऊपर स्वयं की इच्छाओं और आवश्यकताओं को रखता है फलस्वरूप वह संयुक्त परिवार के दबाव में नहीं रहना चाहता परन्तु जब उसको अपनी आवश्यकताओं चाहे वो स्वास्थ्य से सम्बन्धित हो, व्यवसाय से अथवा आर्थिक कारणों से, परिवार की जरूरत

महसूस होती है तो वह स्वयं को नितांत अकेला पाता है। आधुनिकीकरण के तहत लोगों में अपने हितों की पूर्ति के लिए दूसरों के हितों को नज़रअंदाज करने की प्रवृत्ति बढ़ी है जिसकी वजह से भारतीय समाज में व्यक्तिवादिता का स्तर खतरनाक स्थिति में पहुँच गया। आजकल महानगरों में, माता-पिता दोनों धनार्जन करने में व्यस्त रहते हैं इसके लिए उन्हें अपने छोटे बच्चों से भी दूर रहना पड़ता है। वे उन्हें पूर्ण समय नहीं दे पाते परिणामस्वरूप बच्चे किसी आया या पालनाघर में अपने जीवन के महत्वपूर्ण समय, जिसमें की उनके संस्कार, मूल्य एवं भविष्य की मजबूत बुनियाद तैयार होनी है, में व्यतीत करते हैं। जो उनके व्यक्तित्व में एक अपूर्णता का बोध सदैव कराता रहता है। जब बच्चा बड़ा होता है तो उसे समाज से सामंजस्य और सम्बन्धों के महत्व से लगाव नहीं होता जिसका परिणाम परिवारिक संबंधों पर भी पड़ता है। परिणामस्वरूप वहाँ भी सम्बन्धों में लगाव न होने से विघटन हो जाता है। वर्तमान में कई पीढ़ी के रक्त सम्बन्धी एक साथ नहीं रह पाते। जिसका प्रमुख कारण है बढ़ती व्यक्तिवादिता धनार्जन की अधिक से अधिक लोलुपता और स्वच्छंदता। आज प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं का परिवार निर्मित करना चाहता है जिसमें वह स्वयं उसकी पत्नी और एक या दो बच्चों तक ही सीमित रहना चाहते हैं। ऐसे में परिवार का जो भी सदस्य अधिक धनार्जन करता है वो चाहे पद में छोटा ही क्यों न हो उसे ही ज्यादा मान सम्मान दिया जाता है अर्जित प्रस्थिति के द्वारा वह समाज में जो प्रभाव रखता है उसी के आधार पर घर में उसको प्रभुत्व प्रदान किया जाता है। वर्तमान पारिवारिक रूप जो आज के समाज में सामने है उसमें धर्म का नियंत्रण काफी शिथिल हो गया है व्यक्ति आज भी पूजा पाठ करता तो है परन्तु वह केवल धार्मिक भावना से प्रेरित होकर नहीं बल्कि उसके पीछे भी उसकी अपनी कहीं न कहीं अर्थ और समृद्धि की भावना प्रबल रूप से दिखाई देती है। अतः आज सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यक्रम धर्म के अनुसार न होकर, दिखावा मात्र रह गये हैं। धर्मनिरपेक्षता बढ़ रही है, व्यक्ति धर्म के अनुसार न चलकर अर्थ की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है चाहे वह किसी

भी विधि से प्राप्त किया गया हो। परिवार के स्थायित्व में निरंतर गिरावट आ रही है आज ईर्ष्या, स्वार्थपरकता एवं व्यक्तिगत श्रेष्ठता की भावनाओं ने परिवार के त्याग स्नेह संरक्षणात्मक बंधनों को नष्ट कर दिया है और व्यक्ति अपने लाभ के लिए अपने भाई अथवा बहन को भी नुकसान पहुँचाने में नहीं झिझक रहा है फलस्वरूप जो भारतीय समाज की रीढ़ (परिवार संस्था) थी उसमें विघटन होने के कारण उसकी प्रकृति अस्थाई होती जा रही है।

वर्तमान परिवारों के आत्मीय संबन्ध क्षीण होने के कारण संतानों को पर्याप्त भावनात्मक लगाव प्राप्त नहीं होता, पारिवारिक सदस्यों में आत्मीय सम्बन्ध अर्थ सम्बन्धों के भार तले दब गये हैं। ऐसे में एक नवयुवक जो आयु परिवर्तन के दौर से गुजर रहा होता है उसको अगर भावनात्मक लगाव अपने परिवार से नहीं प्राप्त हो पाता तो वह कभी-कभी गलत दिशा की ओर बढ़ जाता है जो कि किसी भी राष्ट्र अथवा परिवार के लिए सदैव नुकसान देय ही होता है। प्राचीन समय में विवाह सम्बन्ध परिवार के मुखिया द्वारा निर्धारित होते थे जिसके आधार पर ही संतान को विवाह बंधन में बंधना होता था। परन्तु आज विवाह का निर्धारण संतान स्वयं ही अपनी इच्छानुसार कर रही है अब विवाह के धार्मिक बंधन वाले रूप में भी परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है जिसके परिणाम स्वरूप परिवारों में विवाह-विच्छेद की संख्या में वृद्धि देखने को मिलती है आज के समय में विवाह को दो परिवारों का बंधन न मानकर बल्कि एक समझौते के रूप में लिया जाने लगा है। साथ ही वर्तमान भारतीय परिवारों में कानून का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। आज के समय में राज्य ने शिक्षा, रहन-सहन, विवाह की आयु, विवाह विच्छेद जैसे तमाम कानून बनाकर पारम्परिक भारतीय पारिवारिक संरचना को प्रभावित किया है। परिवार सुरक्षा की जिम्मेदारी अब राज्य तथा विभिन्न विभागों पर आ गयी है। आज यदि कोई दुर्घटना घटित हो जाए तो विभिन्न सामाजिक उपक्रमों द्वारा बीमा इत्यादि के द्वारा क्षतिपूर्ति की जाती है जबकि पारम्परिक भारतीय समाज के किसी भी सदस्य के साथ कोई अनहोनी घटित होने पर परिवार के प्रत्येक सदस्य उसकी पूरी जिम्मेदारी उठा लेते

थे। जिससे सदस्य और समाज पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता था। प्राचीन परिवारों में वृद्धजनों के संचित अनुभव के द्वारा व्यक्ति अपने विकास मार्ग को बाधा रहित करते थे उनको गुरु तुल्य मानकर सर्वाधिक सम्मान दिये जाने की संस्कृति रही है। परन्तु आधुनिक जीवनशैली में वृद्धों की भावनाओं को समझने का समय युवाओं के पास नहीं होता, वृद्धजन भावनात्मक और नातेदारी सम्बन्धों को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि युवा तार्किक और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को अधिक महत्व देने के पक्ष में हैं।

इसी प्रकार आधुनिकीकरण के तहत तरह-तरह के जो शैक्षिक संस्थान प्रकाश में आये हैं उनमें शिक्षा ग्रहण कर नवयुवकों को जब योग्य अजीविका साधन नहीं प्राप्त होता है तो उनके अन्दर कुन्ठा और निराशा प्राप्त हो जाती है फलस्वरूप वे गलत दिशा की तरफ कदम बढ़ाने में संकोच नहीं करते। संचार साधनों के गाँव-गाँव पहुँचने से जहाँ उन्होंने एक तरफ विकास में सहयोग दिया है वहीं दूसरी तरफ इसका नकारात्मक पहलू भी दिखाई देता है। अधकचरे ज्ञान ने युवक-युवतियों को दिशा भ्रमित कर दिया है। वे अपने आदर्श एवं मूल्यों को भूलकर आधुनिकीकरण के प्रभाव में अनुचित वेशभूषा को धारण कर अपनी संस्कृति का उपहास उड़ाते हैं। उनके अन्दर मानवीय संवेदना, समानता, बुजुर्गों का सम्मान इत्यादि भाव लुप्तप्राय हो गये हैं। व्यक्ति अपने स्वार्थ में ही लीन होता जा रहा है समाज परिवार पड़ोस उसके लिए उतने महत्वपूर्ण नहीं रह गये हैं। उनमें बढ़ती आकांक्षाओं के कारण तीव्र सामाजिक असंतोष फैल रहा है।

आज भारत में आधुनिकता की जो प्रक्रिया चल रही है उसमें गुणात्मकता को और बढ़ाने की आवश्यकता है। अपनी भारतीय परम्परागत संरचना में बदलाव ला कर उसको अधिक तर्कवादी बनाने की जरूरत है परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखते हुए यह परिवर्तन होना चाहिए कि हमारी जो परम्परागत विशेषता है उसका विखण्डन न होने पाये क्योंकि परम्परा अपने में जो मूल्य, आदर्श, ज्ञान समेटे है वह अमूल्य है। अतः आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में भारतीय समाज के लोग विषय विशेषज्ञता



हासिल करने के साथ ही अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं सभ्यता के संदर्भ की दृष्टि से सोच कर अपने ज्ञान का प्रयोग करें तो व्यक्ति राष्ट्र दोनों की प्रगति निश्चित है ।

**संदर्भ –**

1. प्रभु, पी.एच. – हिन्दू सोशल ऑर्गेनाइजेशन, द पापुलर बुक डिपार्टमेन्ट बम्बई 1954
2. श्रीनिवास एम0 एन0 – सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया – 1977
3. देसाई0 आई0 पी0 – सम ऑस्पेक्ट्स ऑफ फैमिली इन महुवा – एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1964
4. कुमार राकेश – नारीवादी विमर्श – आधार प्रकाशन – 2002
5. कपाडिया, के0 एम0 – मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया – ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई 1966
6. सिंह, योगेन्द्र – एस्से ऑन मार्टेनाइजेशन इन इण्डिया – 1978
7. अहूजा, राम – सामाजिक समस्याएं – 2000
8. योजना – दिसम्बर 2009
9. हिन्दुस्तान – 24 सितम्बर 2011

## ग्राम्य समाज की सौंदर्यात्मक संस्कृति

\* डा० सत्या मिश्रा

ग्रामीण सामाजिक संरचना, उसकी संस्कृति, संघर्षों, स्वप्नों, आकांक्षाओं एवं वास्तविक स्वरूप को समझने हेतु ग्रामीण समाज की सौंदर्यात्मक संस्कृति का अध्ययन अवश्य है। इसके विश्लेषण द्वारा ग्रामीण सामाजिक जीवन की वास्तविक ऐतिहासिक संरचना को समझा जा सकता है।

ग्रामीण सौंदर्यात्मक संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहने वाली कथाओं, पौराणिक उपाख्यानों, लोकगीतों, लोक कथाओं, कहावतों, नृत्यकला, नाटकों, मूक अभिनयों तथा चित्र एवं मूर्ति कलाओं का मिश्रण है, जिसमें प्रत्यक्ष अथवा प्रतीकात्मक रूप से ग्रामीण जनता के जगत-सम्बन्धी पर्यवेक्षण (विश्व-दृष्टि), सामाजिक धारणाएँ तथा नैतिक नियम निहित होते हैं अपने क्रमिक उद्भव एवं विकास के अनुरूप। सौंदर्यात्मक संस्कृति समाज की सम्पूर्ण संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। यह कला के माध्यम से जनता के आदर्शों, आकांक्षाओं, स्वप्नों, मूल्यों तथा प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करती है, जिस प्रकार उसकी बौद्धिक संस्कृति, जो उसे सर्वतः आच्छादित किये हुए है, प्राकृतिक एवं समाजिक जगत के ज्ञान को प्रदर्शित करती है। अनेक प्रसिद्ध समाजशास्त्रियों ने कुछ प्रमुख कलाओं की गणना की है जिनमें ग्रामीण समाज की सौंदर्यात्मक संस्कृति के तत्व निहित हैं यथा :-

1. चित्रमय कलाएँ; जैसे आलेखन, चित्रकला, नक्काशी तथा अन्य द्वि-आयामी रूप वाली कलाएँ।
2. मूर्ति कलाएँ; जिनमें "पदार्थों का उपयोग त्रिआयामी रूप ढालने अर्थात् त्क्षण एवं ऊँचे-नीचे, गोल ढांचे में ढालने हेतु किया जाता है।" वे कलाएँ सम्मिलित हैं।
3. लोक कथा; इनमें पुराण कथाएँ, आख्यायिकाएँ, कहावतें, पहेलियाँ, संगीतमय पद्य सम्मिलित हैं।

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, नारी शिक्षा निकेतन पी०जी० कालेज, लखनऊ।

4. नृत्य तथा नाटक; जिनमें चित्रमय, मूर्ति तथा लोक कथायें तीनों ही सम्मिलित हैं, अतः वे सामासिक कलायें हैं।

हर्षकोविट्स, सोरोकिन, जिम्मरमेन, गेल्यन, भारत में '९0आर0 देसाई, मजूमदार तथा अन्य अनेक ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने भरण-पोषणात्मक अर्थतंत्र पर आधारित ग्राम्य समाजों की सौंदर्यात्मक संस्कृति के कुछ विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख किया है। ये लक्षण निम्नांकित हैं :-

1. कला, धर्म, जादू-टोना, बौद्धिक क्रिया कलाओं, दिन-प्रतिदिन के कार्यों, कृषि कर्म एवं सांस्कृतिक क्रियाओं में अविच्छिन्न रूप से अन्तर्निहित रहती हैं।
2. कलात्मक क्रियाओं में सम्पूर्ण ग्रामीण जनों की सहभागिता होती है, आधुनिक समाजों की भाँति श्रोता-समूह एवं कलाकारों में भेद नहीं होता। सभी स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकायें इसमें सहभागी होते हैं। अभिनेता एवं दर्शक के रूप में इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता। यद्यपि कुछ व्यावसायिक कलाकार प्राचीन काल से पाये जाते रहे हैं तथापि उनकी संख्या बहुत कम होती रही है।
3. गांवों में कला का स्वरूप मुख्यतः पारिवारिक होता है। कला ग्रामीण जीवन में ओत-प्रोत रहती है, जिस पर परिवारवाद की छाप अंकित रहती है।
4. ग्रामीण समाजों में परम्परागत रूप से कला की तकनीक सरल होती है। ग्रामीण कला के उपकरण ग्रामीण शिल्प-उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुएं होती हैं। ये उपकरण प्रायः घर में ही निर्मित कर लिये जाते हैं। साधारण ढोल (नगाड़ा, ढोलक, डफ, खंजरी, नौबती), साधारण बाँस या लकड़ी की बनी बांसुरी, इकतारा, रावण हत्था जैसे तारवाले, साधारण ढाँचे वाले यंत्र, सरल रचना शैली के धातु निर्मित यंत्र यथा-घड़ियाल, घंटी, मंजीरा, लकड़ी के यंत्र जैसे करताल, घरेलू उपयोग के बर्तन जैसे-थाली, गागर, लोटा,

चिमटा, कतिपय प्राकृतिक वस्तुयें यथा—वृक्षों की शाखायें, पक्षियों के पंख, सांप, शंख, हाथी दांत इत्यादि परम्परागत आदिम ग्रामीण समाजों में कला के पूर्वापेक्षक होते हैं तथापि कला का प्रदर्शन घरों के अहातों या गांवों के खुले स्थानों में होता रहा है।

5. कृषि ग्रामीण जीवन का आधार है, अतः कृषि जीवन की प्रक्रियायें कला की विषय सामग्री के रूप में होती हैं। लोक—गीतों, लोक—नृत्यों तथा लोक—कथाओं तथा त्यौहार के अवसरों पर बनाये जाने वाले रेखाचित्रों में इनका परिलक्षण होता है।
6. ग्रामीण समाज की प्रकृति से निकटता होने के कारण ग्रामीण कला पर भी प्राकृतिक वातावरण की छाप दिखायी देती है यथा पेड़—पौधे, जीव—जन्तु इत्यादि की रेखागणितीय आकृतियाँ गावों की कलात्मक रचनाओं पर उकेरी जाती हैं। विभिन्न अलंकरणों, भवनों की सजावट, हस्त—निर्मित वस्त्रों में इनकी छाप दृष्टिगत होती है।
7. ग्रामीण कला का अत्यन्त प्रबल लक्षण है कला—कृतियों का प्रमुख रूप से सामूहिक रूप से रचित होना एवं सामूहिकता के भाव से ओत—प्रोत होना। ग्रामीण गीत, कहानियाँ, नाटक, कला—कृतियाँ ग्रामीण कलाकारों की पीढ़ियों की सामूहिक रचनायें होती हैं। अतः अधिकांशतः ये अपने मूल में बिना लेखक के नाम की रचनायें होती हैं। ग्रामीण सामाजिक कला में गहन स्वाभाविकता, सरलता एवं सहजता निहित है, जिसमें समष्टि के भाव, आनन्द, आकांक्षायें तथा स्वप्न प्रबल रूप से प्रकट होते हैं। चूंकि ग्रामीण कला असंख्य पीढ़ियों की भावनाओं एवं जीवन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती है फलतः यह अधिक पूर्ण एवं स्थायी है।
8. परम्परागत रूप से ग्रामीण कला का स्वरूप अव्यावसायिक है। ग्रामीण कलाकार अपनी कलात्मक रचनाओं से लाभ—उपार्जन की भावना से प्रेरित नहीं होता वह कलात्मक उद्देश्य से अनुप्राणित

होता है। बाजारवाद तथा पूंजीवाद, नगरीकरण इत्यादि के कारण ग्रामीण कला का व्यवसायीकरण तीव्र गति से प्रारम्भ हो गया है।

9. कलात्मक शिल्पकारिता तथा संस्कृति का पीढ़ी दर पीढ़ी प्रायः मौखिक रूप से हस्तान्तरित होना ग्रामीण कला का मौलिक लक्षण है। परिवारों के वरिष्ठजन लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाओं एवं हस्तशिल्प का प्रशिक्षण अल्प वयस्कों को प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में ग्रामीण सामाजिक सौंदर्यात्मक संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है तथापि परम्परागत ग्रामीण समाज में परिवर्तन ला रही प्रक्रियाओं ने ग्रामीण कला के स्वरूप को भी परिवर्तित कर दिया है। मूल रूप से सौंदर्यात्मक संस्कृति में परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ ब्रिटिश लोगों के भारत में आगमन से प्रारम्भ हुईं। कला ग्रामीण समाज में अब सामूहिक क्रिया न होकर विशिष्ट क्रिया बनती जा रही है। कला की परम्परागत तकनीक समाप्तप्राय हो गई है और इसका स्वरूप जटिल होता जा रहा है। कलात्मक सृजन का मुख्य लक्ष्य आर्थिक लाभ उत्पन्न करना होता जा रहा है। कला धीरे-धीरे सामूहिक जीवन से पृथक होती जा रही है और कला के अनेक तत्व मौखिक होने के कारण धीरे-धीरे समाप्त हो चुके हैं। आधुनिक-औद्योगिक कलात्मक यंत्रों, नगरीकरण, बाजारवाद, प्रौद्योगिकीय विकास ने ग्रामीण सौंदर्यात्मक संस्कृति के मूल स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है। फलतः परिवर्तनशील ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने हेतु गावों की सौंदर्यात्मक संस्कृति का गहन अध्ययन आवश्यक हो गया है। भारतीय समाज की संस्कृति विविधतायुक्त है अतः ग्रामीण सौंदर्यात्मक संस्कृति में भी क्षेत्रीयता एवं विशिष्टता पाई जाती है, इसलिए इनका श्रेणी विभाजन करके प्रत्येक इकाई का अलग-अलग अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

भारतीय ग्रामीण समाज के सौंदर्यात्मक तत्वों का गहन विवेचन एवं समाजशास्त्रीय अभिलेखीकरण डी०एन० मजूमदार, एस०सी० दुबे, श्री निवास इत्यादि ने किया है, जिनका निरूपण उनकी प्रसिद्ध कृतियों में हुआ

है। मजूमदार ने अपनी कृति 'कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज' में धार्मिक उत्सवों, अनुष्ठानों, फसल चक्र के विभिन्न अवसरों अर्थात् फसल के बोये एवं काटे जाने के अवसरों पर एवं मनोरंजन के साधन के रूप में विभिन्न त्यौहारों पर गाये जाने वाले गीतों का उल्लेख किया है। बृजराज चौहान ने भी अपने विविध अध्ययनों में ग्रामीण संस्कृति के सौंदर्यात्मक तत्वों को खोजने का प्रयत्न किया है। भारतीय समाज की आरम्भिक अवस्थाओं के लिखित इतिहास के अभाव में एवं उसके पश्चात लिखित इतिहास की अपर्याप्तता होने के कारण भी ग्रामीण समाजशास्त्री के लिए सौंदर्यात्मक संस्कृति का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक बन गया है।

संदर्भ —

1. देसाई, ए0आर0 (अनु0 हरिकृष्ण रावत) : 1999, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
2. दुबे एस0सी0 (अनु0 योगेश अटल) : 2000, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. मजूमदार, डी0एन0 : 1960, छोर का एक गांव, (अनु0 चन्द भाल त्रिपाठी), एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
4. मजूमदार, डी0एन0 : 1958, कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई।
5. यंग किम्बाल व डब्ल्यू0 रेमंड मैक : समाज शास्त्र के सिद्धान्त (सिद्धान्त और गवेषणा), यूरेशिया पब्लिशिंग हाऊस (प्रा0) लिमिटेड रामनगर, नई दिल्ली।

## आधुनिक युग में मानव अधिकारों का विकास

\* गोमतेश्वर पाल

स्त्री और पुरुष दोनों सामाजिक प्राणी हैं। वे अकेले नहीं रह सकते हैं।<sup>1</sup> दो प्राणियों ने परिवार को जन्म दिया इसी के साथ मानव की समूह में रहने की प्रवृत्ति पैदा हुई। यही से सामूहिक जीवन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी। एक सामाजिक प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी। इस सामाजिक प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए विधि और नियम का निर्माण किया गया था। जब किसी ने इस विधि और नियम के विरुद्ध कार्य किया और न्यायोचित कोई संस्था नहीं होने के कारण मानवाधिकारो के उल्लंघन का सिलसिला प्रारम्भ हो गया।

राज्यों की उत्पत्ति के साथ ही इनकी सीमाएं निर्धारित हो गयी। राज्यों द्वारा सीमा के अन्दर शक्ति और सुरक्षा के लिए बड़ी बड़ी सीमाएं बनाई गयी। कृषकों और व्यापारियों से कर वसूल करने के लिए कर्मचारी नियुक्त किये गये। कर्मचारी कर वसूलने के नाम पर दण्डस्वरूप शारीरिक कष्ट देते थे, सम्पत्ति को हड़पकर बना दास के रूप में जीवन जीने के लिए छोड़ देते थे।

मानव अधिकारों का विकास प्राचीन यूनान और रोम में हुआ है। सर्वप्रथम मानव अधिकारों की व्याख्या, स्ट्राइक, दार्शनिकों ने मानवाधिकारों के रूप में किया था। सुकरात, प्लेटो और सिसरो के मानवाधिकार सम्बन्धी विचार प्राकृतिक कानून और राजनैतिक आदर्श की अवधारणा में मिलते हैं। सिसरो का विचार है, प्राकृतिक कानून को मानव द्वारा निर्मित कानूनों द्वारा रद्द करना नैतिक रूप से कभी भी उचित नहीं हो सकता है।<sup>2</sup> प्राकृतिक कानून मानव निर्मित कानून से ऊपर है क्योंकि ये कानून शावशत हैं।

मानवाधिकारों का वैधानिक रूप से विकास 1215 ई0 में ब्रिटेन में हुआ है। ब्रिटेन के सम्राट, जान ने नागरिको की स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार पत्र अथवा मैग्नाकार्टा की घोषणा की थी। ह्यूगो ग्रोसियस (1583-1645

\* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय पी0जी0 कालेज, नोएडा।

ई०) की नैसर्गिक शिक्षा का विधान, अधिकार पत्र (1628 ई०) ब्रिटिश अधिकार पत्र (1689 ई०) 1776 का पेंन्सिलवेनिया घोषणा पत्र, फ्रेंच का मेसाच्यूट घोषणा पत्र (1789) वर्जीनिया का बिल ऑफ राइट ने इसे और पुष्ट बनाया है। यद्यपि मानवाधिकार के विकास की विधियां ईसा पूर्व में भी देखने को मिलती हैं। लैगास के यूरुका गीना (3260 ई०पू०), अक्कड़ के सारगोन (2300 ई० पू०) और बेबीलोन के हम्बूराबी (1792—1750 ई०पू०) वैदिक काल के धर्म (1500—500 ई०पू०) आदि मानवाधिकारों का संरक्षण करते हैं।<sup>3</sup>

प्राचीन समय में मानवाधिकारों को संवैधानिक रूप से लिपिबद्ध रूप देना ही था। राजा का आदेश ही कानून होता था। ये कानून व्यक्ति की अपेक्षा राजशाहों को अधिक संरक्षित करता है।<sup>4</sup> धर्म ने भी राजशाही सत्ता को अपना समर्थन दे रखा था। उसने राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि बनाया। राजा सर्वशक्तिमान हो गया। सिंहासन पर आलसी और बुद्धिहीन राजाओं का चयन हो गया और वे निरंकुश हो गये। पोप ग्रेगरी सप्तम् ने रोमन साम्राज्य की निरंकुश नीतियों का विरोध किया। 'आन्तरिक विद्रोह एवं नेपोलियन के आक्रमण से रोमन साम्राज्य का पतन हो गया तथा सामन्ती राज्यों (476 ई० 1500ई०) का उदय हो गया। सामंतवादी व्यवस्था ने श्रमिकों और कृषकों का प्रयोग अपने हित में किया। हित में अभिवृद्धि के लिए उनका शोषण भी करना शुरू कर दिया। उनकी स्थिति बदतर हो गयी।<sup>5</sup> सामन्त अब अन्नदाता हो गये। कृषक और श्रमिक अन्नदाता के दास हमेशा के लिए बन गये।

राजशाही सत्ता और पोपशाही की आलोचना की गयी और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और मानवीय पहलुओं को स्थापित करने में मध्यकालीन विचारकों का योगदान रहा है। सन्त एक्वीनास (1227—1274 ई०) जान आफ पेरिस (1263—1306 ई०), मार्सीलियो ऑफ पेडुआ (1278—1343 ई०), मैकिया वली (1469—1527 ई०), जीन वोदा (1530—1596 ई०), थामस हाब्स (1558—1679 ई०), जॉन लॉक



(1632–1704 ई0), जे0 जे0 रूसो (1712–1778 ई0) आदि प्रमुख विचारकों ने मानवीय तर्क के आधार पर प्राकृतिक कानूनों की अवधारणा को आगे बढ़ाया है।<sup>6</sup>

सन्त एक्वीनास मध्यकालीन विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। उसने सन्त ऑगस्टाइन के विचारों की आलोचना की और पोपशाही सत्ता के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजा दिया था। उसने अरस्तू के ऐतिहासिक सुख के दर्शन को स्वीकार किया है और कहा है कि मानव जीवन का इससे बड़ा एक लक्ष्य होता है, जिसकी तुलना में यह सुख गौण है और वह है मुक्ति प्राप्त करना।<sup>7</sup> मनुष्य राज्य में रहकर अपना पूर्ण विकास कर सकता है। राज्य श्रेष्ठ है क्योंकि रीति रिवाजों की एकता और समानता पायी जाती है। यह दृष्टिकोण मानवाधिकार के क्षेत्र में परिपक्व दृष्टिकोण था।

सन्त एक्वीनास ने मानव के विकास के दो प्रकार बताये हैं प्रथम, भौतिक सुख की प्राप्ति दूसरा आध्यात्मिक सुख। व्यक्ति को इन सुखों को प्राप्त करने के लिए चार प्रकार के कानूनों का पालन करने की सलाह दी –

1. शाश्वत कानून
2. प्राकृतिक कानून
3. मानवीय कानून
4. दैवीय कानून

कानून के चार प्रकार विवेक के ही चार रूप हैं ये भिन्न व्यवस्था के चार स्तरों पर अपने आप को प्रकट करते हैं।<sup>8</sup> 'शाश्वत कानून, ईश्वरीय ज्ञान है जिसके द्वारा प्रकृति की सृष्टि की जाती है और जो प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड पर नियन्त्रण रखता है। सृष्टि के सभी जीवों के अन्तर्गत मानव, पशु और वनस्पति आदि इसी कानून के अधीन है।<sup>9</sup> ये कानून मनुष्य के विवेक से ऊपर है वह इसे आभास कर सकता है समझ नहीं सकता है सन्त एक्वीनास का शाश्वत कानून में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवीय कानून की व्यवस्था करता है।

प्राकृतिक कानूनों की उत्पत्ति शाश्वत कानूनों से हुई है। ये कानून

सरल, स्पष्ट और बोधगम्य होते हैं। शाश्वत कानूनों के समान प्राकृतिक कानून भी सम्पूर्ण विश्व में पाये जाते हैं प्रत्येक जीव, पौधे, अचेतन रूप से कार्य करते हैं और मनुष्य विवेक के साथ इसका प्रयोग करता है। अरस्तू ने लिखा है 'मानव ऐसे जीवन की इच्छा करता है, जिसमें विवेकीय स्वभाव की सिद्धि हो।'<sup>10</sup>

दैवीय कानून वे कानून हैं, जब व्यक्ति का विवेक शून्य हो जाता है और बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं तो बुराइयों को दूर करने के लिए ये कानून व्यक्ति की आत्मा को निर्देशन देने का कार्य करती हैं। हैकूर के अनुसार 'दैवी कानून नागरिकों और प्रशासकों को उन क्षेत्रों में प्रेरित करने का ईश्वरीय तरीका है जहाँ मानवीय कानून नहीं पहुँच पाते हैं।'<sup>11</sup>

'मानवीय कानून प्राकृतिक कानून पर आधारित होते हैं।'<sup>12</sup> जिनका प्रयोग भय व्याप्त करके समाज में शक्ति की स्थापना करने हेतु की जाती है। मानवीय कानून प्राकृतिक कानूनों द्वारा परिभाषित किये जाते हैं। जैसे चोरी हत्या, एक पाप है।

मैकियावली का जन्म यूरोप के नवजागरण काल में हुआ था। मैकियावली पहला आधुनिक राजनीतिक विचारक था जिसने धर्म और पोप की सत्ता को अलग-अलग करके राज्य को सर्वोच्च इकाई के रूप में स्थापित किया है। धर्मनिरपेक्षता राज्य की सर्वोच्चता होगी। प्रत्येक व्यक्ति मानवीय स्वतन्त्रता और मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने हकदार है। उसका विचार है। नागरिक अधिकारों के निर्माण में राज्य अपनी भूमिका अदा करे।" इस प्रकार राजनैतिक संरक्षण की वकालत कर मानव अधिकारों को मजबूत आधार प्रदान किया है। बांदा ने राजाओं को अपने क्षेत्र का सम्प्रभु बताया है<sup>13</sup> जो परम्पराओं और नैतिक नियमों से बंधा है। उसके अनुसार – राज्य के सभी व्यक्ति जो नागरिक होंगे वे सम्प्रभु के अधीन होंगे। राज्य दास नाम का शब्द तक नहीं होगा। अस्तु, मध्यकाल में नागरिक अधिकारों की चर्चा की गई है।

17वीं शताब्दी में ब्रिटेन में गृहयुद्ध छिड़ गया था। थामस हॉब्स

ब्रिटेन के युद्धकाल का दार्शनिक था। उसने गृहयुद्ध का चित्रण इंग्लैण्ड निवासी ब्लैकस्टन ने अपनी पुस्तक कमेण्ट्रीज ऑन लाग आफ इंग्लैण्ड में मानवीय अधिकारों की चर्चा प्राकृतिक विधि के रूप में, प्राकृतिक अवस्था से की है। उसने लिखा है कि हम मानव स्वभाव में संघर्ष के तीन प्रमुख कारण देखते हैं— प्रतिस्पर्द्धा, भय और यश। प्रतिस्पर्द्धा के कारण वे लाभ के लिए, भय के कारण रक्षा, यश के कारण प्रसिद्धि के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं।<sup>14</sup> हाब्स का मानना है कि लोग संघर्ष की अवस्था से निकलने के लिए राजा को और अधिक शक्ति प्रदान की। राजा ने वचन दिया कि हम आपकी सुरक्षा करेंगे यदि हम इस वचन को निभाने में असमर्थ हो जाते हैं तो तुम मेरा विरोध कर सकते हो। 'वह व्यक्ति को जीवन रक्षक, स्वतन्त्रता का अधिकार देता है।'<sup>15</sup> राज्य अपने नागरिकों यह अधिकार स्वेच्छा से देता है। अधिकार कानून द्वारा मर्यादित होने चाहिए अन्यथा व्यक्तियों के अधिकारों का हनन हो जायेगा।

18 वीं शताब्दी ने जॉन लॉक, रूसो मांटेस्क्यू और वाल्टेयर आदि विचारकों ने मानवीय तर्क के आधार पर प्राकृतिक कानूनों की वैधता, एवं आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट किया है। जॉन लॉक उदारवाद का जनक है और ब्रिटेन की गौरवपूर्ण क्रान्ति का शिशु है। लॉक प्राकृतिक कानून का समर्थक था। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों को तीन प्रकार के अधिकार प्राप्त थे—जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति का अधिकार। व्यक्ति अपना जीवन प्राकृतिक अवस्था के अनुसार व्यतीत करता था। सरकार की तुलना में व्यक्ति अधिक शक्तिशाली है। हारमोन ने लिखा 'सरकार को जनता के समान अधिकार प्राप्त नहीं, सरकार के जनता के प्रति कर्तव्य ही हैं।' उसका विचार है कि कोई उन्हे दासता की दिशा की ओर ले जाने का प्रयत्न करें उन्हें यह अधिकार होगा कि वह अपने को मुक्त कर ले।'<sup>16</sup> जनता को चाहिए कि वह राजा के आदेशों और नीतियों पर नजर रखे और गलती करने पर उसका विरोध करें।

1789 की फ्रांसीसी की क्रान्ति प्रेरणा स्वरूप रूसो स्वतन्त्रता का

समर्थक था। उसने एक नारा दिया 'मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है किन्तु वह सर्वत्र जंजीरों से जकड़ा होता है। सामाजिक व्यवस्था और भौतिक परिस्थितियों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता छीनकर दास बना दिया है। दासता से मुक्ति पाने के लिए उसने राज्य के सभी नागरिकों को 'सामान्य इच्छा' का समर्थन करने को कहा। सामान्य इच्छा समाज की आदर्श इच्छा है जिसके कारण सभी का कल्याण सम्भव है। नागरिकों की सामान्य इच्छा के अनुसार कानून निर्माण होगा और लागू भी किया जायेगा। बोसांके ने कहा है कि 'सामान्य इच्छा सम्पूर्ण समाज की सामूहिक अथवा सभी व्यक्तियों की ऐसी इच्छाओं का समूह है, जिसका लक्ष्य सामान्य हित की पुष्टि हो।'<sup>17</sup> सामान्य इच्छा का प्रभाव फ्रांस के नागरिकों पर पड़ा। जनता को सामूहिक शक्ति द्वारा मानव अधिकारों का दावा करके चुनौती दी गई। 'फ्रांसीसी क्रान्ति के नारे थे— स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व। क्रान्ति के बाद अधिकारों की घोषणा मानवाधिकारों की साक्षी है, जिन्हें मनुष्य का अधिकार' कहा जाता है।

लॉक और रूसों द्वारा दिये गये विचारों से न केवल फ्रांस में ही क्रान्ति हुई बल्कि वर्जीनिया में क्रान्ति (1776) हुई थी। क्रान्ति के बाद वर्जीनिया में भी बिल ऑफ राइट्स की घोषणा की गई। 1776 पेनसिलवेनिया में घोषणा पत्र, मेरी लैण्डी, न्यूजर्सी में नवीन संविधान की घोषणा जिसमें मौलिक अधिकारों की घोषणा की गयी। 1789 मेसाच्यूट घोषणा पत्र में भी मौलिक अधिकारों की घोषणा की गयी।

19वीं शतब्दी के मध्य में आर्थिक सुरक्षा व आर्थिक सामाजिक न्याय की मांग बढी। इस सदी की समाजवादी तान्त्रिक एवं उदारतावादी सदी के नाम से जाना गया। 1917 बोलशेविक क्रान्ति ने यह सिद्ध कर दिया कि राजनैतिक अधिकारों के साथ आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा के अधिकार मिलने चाहिए। 19वीं सदी के मध्य में यूरोप व उत्तरी अमेरिका में औद्योगिक व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास ने इन अधिकारों का महत्व बढा दिया। सामान्य व उद्योगपति कम मजदूरी पर अधिक काम लेते थे। भारत में

सामान्तः अपने दासों को बासी खाना देते थे। और कपड़ा आधा तन ढकने के लिए देते थे। वर्तमान काल में राज्य का उद्देश्य न्यूनतम मजदूरी है।

जरमी बेन्थम (1748 ई0—1832 ई0) में उपयोगितावाद के दर्शन को विकसित किया। बेन्थम का उपयोगितावादी सिद्धान्त व्यक्ति को अधिकतम सुख देने के पक्ष में है। उसका विचार है कि राज्य ऐसा कार्य करे जिसमें व्यक्ति को अधिकतम सुख प्राप्त हो। 'अधिकतम सुख मानव कल्याण से जुड़ी मानव अधिकार की एक कड़ी है। 'मिल' अपने स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचार में सभी व्यक्तियों को विचाराभिव्यक्ति की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।<sup>18</sup> मिल का विचार है कि सभी व्यक्तियों के विचार समान होने चाहिए। यहाँ तक कि कोई पागल अथवा सनकी है तो उसका भी सम्मान होना चाहिए क्योंकि कभी-कभी ऐसे लोग गूढ और दूरदर्शिता की बात कह जाते हैं। सुकरात, ईसामसीह को पागल समझ कर मौत दे दी गयी यदि वे कुछ दिन और जिन्दा रहते तो कुछ और रहस्य खोलते। मिल का विचार मानसिक और शारीरिक रूप से विंकलाग व्यक्तियों को अधिकार प्रदान करता है। 20 दिसम्बर 1971 में महासभा ने प्रेरणा लेते हुए मानसिक रूप से मंदित व्यक्तियों के अधिकारों की घोषणा प्रस्ताव पारित किया गया था।

19वीं शताब्दी में जहाँ एक ओर उदारवाद, व्यक्तिवाद और लोकतन्त्र की लहर दौड़ रही थी वहीं दूसरी ओर कांट, फीक्से और हीगल सर्वाधिकारवाद, अधिनायकवाद के विचार को फैला रहे थे। 20सदी में इटली में फासीवाद, जर्मनी में नाजीवाद के रूप में अधिनायकवादी ताकतों का उत्थान हो गया। हीगेल का विचार है, अन्तर्राष्ट्रीय कानून को कोई महत्व नहीं है क्योंकि युद्ध मानवता के विकास का महत्वपूर्ण साधन है।<sup>19</sup> वह अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता को अभिशाप मानता है। आज अमेरिका सहित यूरोप के देशों ने मानवाधिकार की आड़ में अपने राष्ट्रीय हित में अभिवृद्धि की है। बंधुआ मुक्ति मोर्चा के प्रधान कार्यकर्ता स्वामी अग्निवेश ने ऐसा ही विचार दिया, आरम्भ में उन्होंने अमेरिका, जर्मनी, अन्य यूरोपीय राष्ट्र बाल श्रम और बंधुआ श्रम के खिलाफ लड़ाई में मेरा साथ दिया, मगर जल्दी ही वे बाल श्रम

के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध की बात करने लगे। फिर अमेरिका और फ्रांस की सरकारों ने विश्व व्यापार संगठन के बैनर तले सामाजिक प्रावधान में बलपूर्वक श्रम के विरुद्ध विलाप का प्रयोजन आरम्भ कर दिया।<sup>20</sup> इन देशों का उद्देश्य वस्तुओं का निर्यात हो आयात नहीं। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' पृथ्वी के मौलिक शक्तिशाली हो सकते हैं। हीगेल भी राज्य को शक्ति का आधार बनाता है।

20 शताब्दी लोकतन्त्र की सदी कह जाती है। लोकतंत्र की सुरक्षा के लिए प्रथम विश्वयुद्ध हुआ था। शक्ति के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। 'कमजोर राष्ट्र संघ और विभेद पूर्ण वर्साय की सन्धि ने विश्व के अनेक देशों में अधिनायकवाद की जड़े पुनः स्थापित हो गयी। 1922 में इटली में मुसोलिनी द्वारा फासीवाद, जर्मनी में हिटलर द्वारा नाजीवाद, 1923 में स्पेन में प्राइमो डी रिवेरो, 1929 में पोलेण्ड में पिलड्यूस्कों एवं 1931 में रूमानिया के राजा कारोल ने अधिनायकवाद की स्थापना की।

राष्ट्र संघ की खुलकर धज्जियाँ उड़ायी गयी। मिश्र में कर्नल मासिर ने सवैधानिक राजतंत्र को समाप्त कर अधिनायकवाद की स्थापना की। टर्की, बुल्गारिया, पुर्तगाल और हंगरी में अधिनायकवाद आ गया। लीबिया, ईराक, अल्जीरिया, सीरिया में सैनिक शासन कायम हो गया। पकिस्तान में अयूब खान ने इण्डोनेशिया में सुकर्णो ने सत्ता की बागडोर अपने हाथों हथिया ली।' अधिनायकवादियों का विचार है 'लोकतन्त्र एक सड़ती हुई लाश है, संसदें बकवास की दुकानें। राष्ट्र संघ द्वारा चलाये जा रहे अनेक कार्यक्रम असफल सिद्ध हो रहे थे। उसके पास ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जिससे वह दण्डित कर सकता। राष्ट्र संघ के नष्ट होने के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना ही हो गई।

### संदर्भ

1. मानव अधिकार और मीडिया, बालमुकुन्द श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 1
2. पाश्चात्य राजनैतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ पुखराज जैन,

- साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा— 2008, पृ0 93
3. जी0 आर0 ड्राइवर एंव जे0 बी0 माइल्स द्वारा सम्पादित दि बेबीलोनियन लॉस, 1952— यस0 पी0 सिन्हा ह्यूमन राइट फिलासिफिकली, इंडियन जर्नल लॉ ऑफ इण्टरनेशनल लॉ, वाल्यूम 18 न0 2, पृ0 144
  4. ए हिस्ट्री आफ पलिटिकल थ्योरी, जी0एच0 सेवाइन/पल थॉरसन, आक्सफोर्ड 8 आई0 बी0 एचं0 पब्लिसिंग न्यूार्क 1973, पृ0 22
  5. ए हिस्ट्री आफ पलिटिकल थ्योरी, (पार्ट 1) डब्लू ई0 डनिंग 1970 पृ0 23 कारनेल युनिवर्सिटी प्रेस लन्दन प्रेस लन्दन
  6. ए हिस्ट्री आफ पॉलिटिकल थ्योरी, जी0 एच0 सेवाइन/पल थॉरसन, आक्सफोर्ड 8 आई0 बी0 एचं0 पब्लिसिंग न्यूार्क 1973 पृ0 195
  7. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ0 पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ0 97 साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा
  8. राजनीतिक दर्शन का इतिहास—सेवाइन खण्ड—पृ0 232 एल शासन आक्सफोर्ड, 1973
  9. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ0 पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ0 102 साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा
  10. राजनीतिक दर्शन का इतिहास—सेवाइन खण्ड अनुवादक विश्व प्रकाशगुप्त यस चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1970
  11. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ0 पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ0.8, साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा
  12. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ0 पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ0 103, साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा
  13. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ0 पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ0 138, साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा

14. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ० पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ० 145, साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा
15. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ० पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ० 150, साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा
16. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ० पुखराज जैन, फस्ट एडीशन, 2008 पृ० 165, साहित्य भवन पब्लिकेशन— आगरा
17. मानव अधिकार—डॉ० जय जय राम, उपाध्याय, 2007 पृ० 9, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी—इलाहाबाद
18. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डॉ० पुखराज जैन, प्रथम एडीशन, 2008 पृ० 228, साहित्य भवन पब्लिकेशन—आगरा
19. किरन कम्पटीशन टाइम्स— इलाहाबाद पृ० 103, मासिक पत्रिका — 2006
20. मानवाधिकारों का संघर्ष—मानवाधिकारो की अर्थनय—राजकिशोर, पृ० 111, 2011 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली



## सामाजिक विकास व पर्यावरण संरक्षण

\* डॉ कविता कनौजिया

समाज प्रकृति का एक अंग है। मनुष्य समाज में रहता है समाज को दूषित न होने देना उसका कर्तव्य है यही सामाजिकता है। समाज के सभी प्राणी प्रकृति से प्रभावित होते हैं प्रकृति के अभाव में सामाजिक जीवन असंभव है। संतुलित पर्यावरण में सभी प्राणी अपनी स्वाभाविक स्थिति में जीवन जीते हैं तथा अस्वाभाविक स्थिति में उनका क्षय होता जाता है सामाजिक अभ्युदय के लिए समाज का सद्भावना पूर्ण मर्यादित व्यवहार अनिवार्य है। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से समाज में भरपूर खुशहाली है, उत्तम परिवेश मानव मन को आनन्दित करता है, स्फूर्ति एवं उमंग का संचार भर देता है। मनुष्य को जटिल कार्यों को करने में सफलता मिलती है।

प्रकृति के अन्तर्गत भूमिजल, अग्नि, वायु, वृक्ष एवं जीव-जन्तु सभी सम्मिलित हैं। भूमि से भोज्य पदार्थ, जल से जीवन शक्ति, ताप, उष्मा विकास का आधार है। आकाश ध्वनि, तरंग शब्द शक्ति और संवेदनाओं का स्रोत है इनमें से कोई एक भी दूषित होता है तो सामाजिक मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ईर्ष्या, छल, कपट जैसे दुष्ट भाव उत्पन्न होते हैं, निष्क्रियता, दबाव, तनाव तथा चिन्ता को जन्म देता है। मनुष्य के अन्दर सत्य दृढ संकल्प, त्याग जैसे विशिष्ट गुणों से प्रतिकूल परिस्थितियों पर नियंत्रण कायम रखा जा सकता है।

समाज व पर्यावरण संरक्षण मानव व पर्यावरण के बीच सम्बन्धों को सुधारने की एक प्रक्रिया है इसमें उन मानवीय क्रिया-कलापों को नियमन, प्रबन्धन करना जिसकी वजह से पर्यावरण को क्षति पहुँचती है। अर्थात् मानव जीवन शैली को प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप बनाना है। किसी ने कहा है – शक्ति उन्हीं को मिलती है जो प्रकृति के साथ साधना करते हैं।

शेक्सपीयर ने लिखा है— "The poem hangs on the berry bus, when comes

\* समाजशास्त्र विभाग, किशोरी रमण गर्ल्स (पी0जी0), कालेज, मथुरा (उ0प्र0)

the poet's eye”

प्रकृति में अपार ज्ञान का भण्डार है इसके हर अंग में शिक्षा का एक-एक पूर्ण पाठ है, इसमें न धोखा है, न पक्षपात है। प्रकृति के बनते-बिगड़ते रूपों का वर्णन कवि की कविता को जन्म देती है, प्रकृति की गुणवत्ता लेखक के लेखनी को दिशा देती है इसी प्रकार संगीत की उत्पत्ति भी प्रकृति मानी जाती है। पशु-पक्षियों की बोली, नदियों की कल-कल, बादलों का गर्जना, चमकना, झरनों की झरझर, बरसात की रिम-झिम संगीत के सात स्वरो के जन्म स्रोत माने गये हैं।

विज्ञान व तकनीकी वृद्धि के साथ-साथ प्राकृतिक सम्पदाओं का अव्यवस्थित उपयोग हुआ है, प्राकृतिक साधनों के अनुचित उपयोग से प्रदूषण फैलाने वाले तत्वों में वृद्धि होती रही है। आज जहाँ उपलब्धियों के नये कीर्तिमान प्राप्त हो रहे हैं वहीं सर्वाधिक क्षति पर्यावरण को हो रही है। वर्ष 2000 में विश्व भर में गरीबी और उससे जुड़ी सामाजिक समस्याओं जैसे निरक्षरता, भूख, महिलाओं के प्रति भेद-भाव, असुरक्षित पेयजल तथा पर्यावरण विनाश को रोकने हेतु लगभग सभी देशों ने संयुक्त राष्ट्र सहराब्दी शिखर सम्मेलन में सभी देशों ने भाग लिया। इंटरगवर्नमेंट पैनेल ऑन क्लाइमेट चेंज के अनुसार विकसित देशों को 2020 तक अपने कॉर्बन उत्सर्जन में 25 से 40 प्रतिशत कमी करनी होगी।

धरती पर 70 प्रतिशत जल है परन्तु पीने व अन्य आवश्यक उपयोग हेतु केवल 3 प्रतिशत जल है। भारत में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 1947 में 6000 घन मीटर थी जो 2001 में 1829 घन मीटर रह गयी। लगातार जल स्तर नीचे जा रहा है आने वाले दिनों में समाज में पेयजल संकट की समस्या हो जायेगी। ऋग्वेद के अनुसार जिस प्रकार माता पुत्र का कल्याण करती है उसी प्रकार जल हर प्राणियों के लिये कल्याणकारी है। अथर्ववेद में उल्लेख है— हरे पेड़, पर्वत, जंगल आदि न काटे ये सब मानव कल्याणकारी है।

वर्तमान में ग्रीन टेक्नोलॉजी पर्यावरण संरक्षण में सार्थक साबित हो

रही है यह तकनीक प्रदूषण से लड़ने में सहायक है ग्रीन जॉब एक्ट ऑफ 2007 के तहत ग्रीन कालर जॉब बना है। ग्रीन प्रौद्योगिकी में शाकाहार की भूमिका सराहनीय है। पशुपत उपनिषद में स्पष्ट है—आहार में अभक्ष्य त्याग देने से चित्त शुद्ध होता है और जीव हत्या भी नहीं होती। चरक के अनुसार—माँसाहार की तुलना में शाकाहार श्रेष्ठ है शाकाहारी होने से ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन 1/6 प्रतिशत कम हो सकता है क्योंकि मांस पकाने में 6 गुना ज्यादा ऊर्जा की खपत होती है।

जन साधारण अकेले यात्रा के लिये निजी वाहन की जगह सार्वजनिक वाहन का प्रयोग करें तो 60 प्रतिशत वायु प्रदूषण कम हो सकता है। कागजों को अनावश्यक प्रयोग में न ले और रद्दी को रीसाइकलिंग के लिये भेजे। अगस्त, 1998 की अपशिष्ट निस्तारण विज्ञप्ति के अनुसार नीले रंग के पात्र में सिंरिज, शीशा, प्लास्टिक की बोटले निःसक्रमित करने की पहल पर्यावरण संरक्षण में सार्थक साबित हो सकती है।

**संदर्भ —**

1. Bhargava Akhaya and Shukla S.K. - Environment Preservation and Protection
2. Sinha Rajiv K. – Environment Crisses and humans at risk
3. ऋग्वेद 1/41/4
4. ऋग्वेद 10/124/9
5. श्रीवास्तव वी०के० एवं राव पी० पी० —पर्यावरण और पारिस्थितकी
6. वी० एल० शर्मा एवं पलक भारद्वाज — मानव पर्यावरण, मलिक एण्ड कम्पनी, संस्करण 2003

## RIGHT TO INFORMATION (RTI) ACT, 2005: A KEY TO BRING TRANSPARENCY & ACCOUNTABILITY IN SYSTEM

\* Dr. S. Mehdi Abbas Zaidi

### Introduction

The Government of India always lays emphasis on making the lives of its citizens easy, smooth and making India truly democratic. Keeping this in mind and to promote transparency and accountability in administration, the Indian Parliament enacted Right to Information Act (RTI) 2005 that empowers citizens to seek information from a Public Authority, thus making the Government and its functionaries more accountable and responsible. RTI has been given the status of a fundamental right under Article 19(1) of the Constitution under which every citizen has freedom of speech and expression and have the right to know how the government works, what role does it play, what are its functions and so on. RTI empowers every citizen to seek any information, take notes, extracts or certified copies of documents or records, take certified samples of material. RTI also mandates timely response to citizen requests for government information. The Act has the potential to bring in a socio-economic revolution, provided that various agencies take up their responsibilities as per the spirit of the Act. The Act has now been in operation for over five years and has benefited many, including the poor and the underprivileged however, cases of misuse also being reported.

There are many cases in media found to be reported of misuse by many for serving vested interests particularly for settling personal and family disputes, including divorce and claim of maintenance related cases. Several cases are appeared in media that report s frivolous and vexatious use of the RTI Act. Many authorities including Public Information Officers alleges that RTI is being misused. They alleges that some people are filing RTI applications to settle personal scores or to satisfy their whims and fancies.

---

\* Dept. of Sociology, Shia P.G College, Lucknow.

### **Case Study: Misuse of RTI**

A subordinate of a senior officer filed an RTI application, seeking some information from his boss. The boss did not respond. In the hearing before P N Vijaya Kumar of Kerala Information Commission, the senior pleaded that the applicant had filed RTI just to harass him and that the applicant himself was the custodian of information requested. The information commissioner passed the following order-

“It may be true that, the requester may be a subordinate. It may be true that, he wanted all the questions to trouble the officer concerned. It may be true that the person who had access to the records himself is making the request. But these are not grounds to withhold the information. Therefore, the information should have been furnished by the Public Information Officer within the time limit. There was a delay of more than 4 months. But the delay was limited to 100 days. Therefore, the Commission is compelled to award the maximum penalty of Rs. 25,000/- to the Public Information Officer. The Public Information Officer shall remit the amount within 30 days of the receipt of this order.”

Almost 52,000 decisions made by information commissions across the country in the year 2008. M.M. Ansari of the Central Information Commission (CIC) is the only information commissioner who has alleged in many cases that there was misuse of RTI or that the information sought was frivolous. Barring him, there would not be more than 50 orders from across the country, where the information commissioners have alleged misuse of RTI or felt that the information sought was frivolous.

### **Conclusion**

Right to Information Act empowers citizens to participate in the governance of country and give a befitting reply to corruption. Just around five years after the act has come into effect; the Act has made many successes and also found cases of misusing the act. Many times, the privileges given by the RTI Act is used by some citizens to harass or blackmail government officials. As in few cases the Central Information Commission (CIC) reprimanded information seekers for

'harassing' public authorities. However, safeguards have been built in within the Act to ensure that the right is not misused. RTI Act section 8 clearly spells out the reasons to deny the information only if it is found it there are chances that the act is being misused. Therefore, the Act need to be used to the maximum but with utmost care and sincerity because its misuse can be more damaging. Therefore strengthen the Right to Information Act 2005 is an urgent requirement. Some measures can be taken to prevent its misuses.

- Provide information in websites, newspapers, magazines, journals etc. When information is available to the public without difficulty its misuse is limited.
- The authorities will also have to ensure that the applicant does not use the information for purposes other than intended.
- Enlighten citizens on RTI Act and its uses.

## महिलाओं की भूमिका निर्वहन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

\* डॉ. वन्दना,

“नारी की सामाजिक प्रस्थिति और समस्याओं के अनेक स्वरूप हैं जिनका सामान्यीकरण असम्भव है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में नगरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में, विभिन्न वर्गों में, विभिन्न प्रस्थिति और उससे जनित समस्यायें बहुत भिन्नतायें रखती हैं।”

महिलाओं द्वारा घर और बाहर के कार्यों का निर्वहन महिलाओं की प्रस्थिति में आने वाले व्यापक परिवर्तन से जनित हैं। शिक्षा एवं विकास ने महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि अनेक क्षेत्रों में पहले से ज्यादा सशक्त बनाया है इसमें कोई संदेह नहीं है किन्तु आधी आवादी के हिसाब से यह ऊँट के मुँह में जीरा जैसी उक्ति को चरितार्थ कर रहा है। आधुनिक युग में महिलाओं ने अध्यापिका, डॉक्टर, नर्स, ब्यूटीशियन, इंजीनियर जैसे व्यवसायों से अलग हटकर ऐसे व्यवसायों को अपनाया है जिस पर पुरुष का एकाधिकार था। नई-नई प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप महिलाओं की प्रस्थिति एवं सम्मान में बढ़ोत्तरी हुई है। इसे हम नकार नहीं सकते क्योंकि नये नये आविष्कारों ने कुछ महिलाओं को पुरुष पर पूर्णतः आश्रित न होकर उन्हें नये आधार भी प्रदान किये हैं। लड़कियाँ, स्कूलों, कालेजों, ऑफिस आदि में खुद गाड़ी चलाकर बाहर निकलने लगी हैं किन्तु एक निश्चित समय सीमा के अन्तर्गत ही। यह भी सोचने का प्रश्न है क्योंकि समाज के निर्माण का केन्द्र बिन्दु परिवार है और हम ऐसे परिवार, समाज को निर्मित कर रहे हैं जहाँ महिला पूर्णतः सुरक्षित नहीं है।

भारतीय सन्दर्भ में नारी की प्रस्थिति एवं भूमिका का निर्धारण जाति, वर्ग,सेक्स, क्षेत्र के आधार पर दिखाई देता है। पारिवारिक दायित्व, बच्चों को पैदा करने, देखभाल करने, घर की साफ-सफाई, खाना बनाने, घर के अन्य लोगों जिसमें विशेषकर वृद्धों की सेवा जैसे कार्य आज भी महिलाओं के

\* समाजशास्त्र विभाग, बी०एस०एन०वी० पी०जी० कालेज, लखनऊ

लिए निर्धारित है। नातेदारी, विवाह आदि का स्थायित्व एवं निरन्तरता महिला के दृष्टिकोण एवं कार्यों पर ही अवलम्बित है। 'महिला के लिए यह कोई खास महत्व नहीं रखता कि आप बाहरी कार्य क्षेत्र में कितने बड़े पद पर हैं बल्कि भारतीय सन्दर्भ में घरेलू कार्य का मैनेजर तो एक निश्चित समय पर लौट कर घर का सारा कार्य भी करेगा' वर्तमान समय में महिलाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक, नकारात्मक दोनो प्रकार के स्वरूप सामने आये हैं, जाति, वर्ग, लिंग आदि के आधार पर महिला विभेद और समस्या अलग अलग तरह की है।

भारतीय महिला परिवार की कीमत पर स्वतन्त्रता व शक्ति प्राप्ति की इच्छुक नहीं है इसी कारण से स्त्रियाँ शिक्षा, व्यवसाय के द्वारा ज्ञान, सूचना, जागरूकता, आर्थिक आधारों को प्राप्त कर लेने के बावजूद भी पारिवारिक जीवन के भावनात्मक सम्बन्धात्मक परिधियों में जकड़ी नजर आती हैं, इन बेड़ियों से उन्हें मुक्ति नहीं मिली है, यही कारण है कि गृहस्थ जीवन के सारे कार्यों को करते हुए भारतीय महिला ने घर के बाहरी कार्यों को अपनाया है जिससे उनकी भूमिकाओं में बढ़ोत्तरी हो गयी है अर्थात् उनके सामने दोहरी भूमिका निर्वहन की समस्या उत्पन्न हो गयी है और यह भूमिका निर्वहन उसे आर्थिक रूप से सशक्त बनाता नजर आता है किन्तु शारीरिक, मानसिक कष्ट की कुछ मात्रा के साथ। 'महिला सशक्तीकरण के सूचकांक पर यदि नजर डालें तो महिलाओं के कार्यभार में कमी का आना, सशक्तीकरण का लक्षण है किन्तु दोहरी भूमिका की वजह से कार्य का बढ़ जाना स्वाभाविक है जिसमें भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था असहयोग करती नजर आती है।

डॉ. राम आहूजा द्वारा किये गये सर्वेक्षण में 10 प्रतिशत से अधिक स्त्रियाँ ऐसी नहीं हैं जिन्हें अपने द्वारा उपार्जित आय का उपयोग करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो, 0.5 प्रतिशत स्त्रियाँ ऐसी मिलीं जिन्होंने अपने भाइयों के समान पिता की सम्पत्ति में हिस्सा लिया हो।

जो स्त्रियाँ घर के साथ-साथ बाहरी कार्यों में सन्लग्न हैं उन्हें



दोहरी भूमिका का निर्वहन करना पड़ रहा है । इस सन्दर्भ में दीपा माथुर ने अपने अध्ययन में पाया कि 53 प्रतिशत महिलायें अपनी दोहरी भूमिका से उच्च सन्तुष्ट, 18 प्रतिशत मध्यम सन्तुष्ट व 29 प्रतिशत असन्तुष्ट पाईं गयीं ।

दोहरी भूमिकाओं के साथ सन्तोष, असन्तोष, कामकाजी महिलाओं के आत्म प्रतिबिम्ब और स्वयं के विषय में की गयी कल्पना को प्रभावित करती है । दोहरी भूमिका के कारण महिलाओं के सामने भूमिका संघर्ष जैसी स्थिति उनके सामने अनेक समस्या भी पैदा कर रही है । काम करने के प्रेरणात्मक स्तर, पत्नी के रोजगार के प्रति पति का दृष्टिकोण, कार्य स्थान का वातावरण, महिलाओं के व्यक्तित्व का प्रकार, आदि महिलाओं को भूमिका निर्वहन में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । दीपा माथुर ने अपने अध्ययन में पाया कि 21.8 प्रतिशत स्त्रियाँ उच्च कोटि की भूमिका से संघर्ष की स्थिति में थीं, 44.4 प्रतिशत निम्न कोटि के तथा 33.8 प्रतिशत किसी भी प्रकार की भूमिका से संघर्ष की स्थिति में नहीं थीं ।

महिलायें घर और बाहरी कार्यों से सम्बन्धित भूमिकाओं को पूरा करने में यह अनुभव करती हैं कि वह अपने व्यावसायिक आकांक्षाओं को कम करें या फिर गृह दायित्व को । इन दोनों पैरामीटर पर अधिकतर कम करती हैं यही कारण है कि उच्च पदों पर महिलाओं की संख्या बहुत कम दिखाई देती है । घर के बाहरी कार्यों में कुछ कार्य ऐसे भी हैं, जहाँ उनकी सुरक्षा, समाज की मानसिकता का खतरा बना रहता है जैसे यात्रा सम्बन्धी कार्य से सम्बन्धित व्यवसाय । जो महिलायें बाहरी कार्यों को करने के लिए आती हैं उनके कार्य की प्रकृति पुरुषों के समान होने के बावजूद भी वेतन या मजदूरी कम दिया जाता है क्योंकि इस बाहरी कार्य को उनके गौण कार्य में सम्मिलित किया जाता है ।

भारतीय समाज औरतों को बाहरी कार्य करने की अनुमति देता नजर आ रहा है किन्तु पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनायें, एवं संस्थायें उन मूल्य व्यवस्थाओं एवं सांस्कृतिक नियमों द्वारा सुदृढ़ होती हैं जो कहीं न कहीं स्त्रियों की हीन भावना की धारणा को प्रचारित करती हैं । समाज में व्याप्त वे

मान्यतायें, प्रवृत्तियाँ जिसमें स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में निम्न होने, साधन एवं लक्ष्य तक पहुँचने से रोकने, तथा निर्णय लेने वाले पदों में सहभागिता को सीमित करने जैसी परिस्थितियाँ प्रमुख हैं ।

समाज की मानसिकता, समाजीकरण के अभिकरण जिसमें खासकर परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका है बच्चों के समाजीकरण में महिलाओं द्वारा ही लड़का एवं लड़की में विभेद आज भी है । हम बच्चों का समाजीकरण जाति, वर्ग, लिंग, क्षेत्र आदि के आधार पर करते हैं जबकि आज के समय की मांग कुछ और ही है हम बच्चे का समाजीकरण एक अच्छे इंसान के रूप में करें । भारतीय समाज आज भी घरेलू कार्य की इजाजत पुरुषों को कम देता है जबकि बदलती परिस्थितियों में जरूरत है दोनो को मिलकर काम करने की जिसकी शुरुवात कम मात्रा में ही सही पर हो चुकी है , जरूरत है इसे बढ़ावा देने की । भारतीय समाज में नारी के सन्दर्भ में प्रतिमानों, मूल्यों का एक विशेष स्वरूप समाज में पाया जाता है जैसे विवाह के समय आज भी महिला के लिए गोरा रंग, सौन्दर्य, स्वभाव के गुण ज्यादा महत्वपूर्ण हैं जबकि पुरुषों के लिए शिक्षा, व्यवसाय की प्रकृति आज भी महत्वपूर्ण बनी हुई है इसे भी बदलने की आवश्यकता है ।

स्वस्थ नारीवाद के परिपेक्ष्य में यदि हम देखें तो नारी के दोहरे निर्माण के सन्दर्भ में मानवीयता आवश्यक है । पुरुष एवं बच्चों के प्रति प्रतिशोध व प्रतिकार की भावना के स्थान पर समता, सहयोग, पुरुष की मानसिकता, खुद महिला की मानसिकता, समाज के मानदण्डों संस्थाओं में बदलाव या विकल्प ढूँढने की जरूरत है जिसमें पुरुष को जोड़ते हुए ही न्यायपूर्ण स्वस्थ समाज की स्थापना हो सकेगी । महिलाओं एवं पुरुषों की परम्परागत भूमिकाओं की पुनः परिभाषा व उन शक्तियों एवं स्थितियों को समाप्त करना है जिससे समानता के अवसर कम होते हों ।

**सन्दर्भ —**

1. निवास, एम0एन0, द चेंजिंग पोजीशन आफ इण्डियन वूमन पृष्ठ-7
2. आहूजा, राम, सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

1999

3. माथुर दीपा, वूमन एण्ड वर्क, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, 1992
4. आहूजा, राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1999
5. परिप्रेक्ष्य, शैक्षिक योग्यता और प्रशासन का सामाजिक,आर्थिक सन्दर्भ अंक-1 अप्रैल, 2007
6. [www.naaree.com/working](http://www.naaree.com/working).

## भारतीय सांस्कृतिक वाङ्मय में शिल्प वर्ग

\* डॉ० सुनीता

भारत में प्राचीन काल से ही शिल्प जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है। यह सुखी जीवन जीने के लिये एक कला साधन ही है। वस्तुतः शिल्प शब्द का प्रयोग हस्त कला के लिये किया जाता है। हाथ से बनायी जाने वाली सभी वस्तुयें शिल्प कला के अन्तर्गत आती हैं, जैसे दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं को तैयार करने की कला, वास्तुकला, कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरण बनाने की कला, ललित कला आदि। इस प्रकार शिल्प का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यदि यह कहा जाय कि शिल्प का सम्बन्ध जीवन में काम आने वाली सभी वस्तुओं से है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

शिल्प (शिल्+पक्) अर्थात् ललित कला, यान्त्रिक कार्य कुशलता अथवा कारीगरी<sup>1</sup>, शारीरिक कार्य कुशलता, दस्तकारी आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहां कला का अर्थ है, कुशलता अथवा क्षमता, जिसके अन्तर्गत चौंसठ कलायें ली जा सकती हैं। वस्तुतः कला का सम्बन्ध सच्ची एवं सूक्ष्म मानसिक दृष्टि से है जबकि शिल्प अथवा कारीगरी का सम्बन्ध शरीर के वाह्य हस्त कौशल से है। एक सैद्धान्तिक है तो दूसरा व्यावहारिक। एक मानसिक है तो दूसरा शारीरिक। फिर भी इन दोनों के बीच प्रगाढ़ सम्बन्ध है। कला का उत्पादित रूप ही कारीगरी है और इसके संरक्षण एवं अभिवर्धन से ही संस्कृति एवं सभ्यता का पूर्ण विकास सम्भव है। प्रथम से तृतीय शताब्दियों के मध्य रचित संस्कृत बौद्ध ग्रंथ महावस्तु में शिल्प एवं शिल्पकारों की दो लम्बी—लम्बी तालिकायें मिलती हैं, जिनमें से एक में 68 और दूसरे में 78 शिल्प— शिल्पकारों का उल्लेख हुआ है। ये दोनों श्रेणी तालिकायें ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में शिल्प—शिल्पी और उनकी सामाजिक तथा आर्थिक जीवन दशा पर व्यापक प्रकाश डालती हैं।

\* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, नारी शिक्षा निकेतन महाविद्यालय, लखनऊ।

विभिन्न प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन से जिन शिल्प एवं शिल्पियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं उनमें से कुछ का विवेचन करना अपेक्षित प्रतीत होता है –

**चर्म शिल्प** :- मानव विकास के इतिहास में चर्म शिल्प को सबसे प्राचीन शिल्प कला के अन्तर्गत माना जाता है। चर्म शिल्पियों का उल्लेख पूर्व वैदिक काल से ही प्राप्त होता है, जिनके लिये **चर्मन** शब्द का प्रयोग हुआ है। चर्मन शिल्पी धनुश की प्रत्यंचा, लटकाने का फन्दा, चमड़े की डोरी तथा लगाम आदि का निर्माण करते थे।<sup>1</sup> समूरदार पशुओं के चमड़े को विभिन्न प्रकार से बिछाने, ओढ़ने और पहनने के काम में लाया जाता था। चर्म शिल्पी को बौद्ध ग्रंथों में चम्मकार<sup>2</sup> शब्द से उद्बोधित किया गया है जो विभिन्न प्रकार के पशुओं जैसे व्याघ्र, सिंह, तेंदुआ आदि के चर्म से जूते बनाते थे।<sup>3</sup> जूतों के भिन्न-भिन्न आकारों<sup>4</sup> का वर्णन भी प्राप्त होता है। जैसे बिच्छू के डंक के आकार वाले जूते, मोर पंख वाले जूते, उल्लू पंख वाले जूते आदि। इन जूतों को लाल, नीले, पीले आदि रंगों से रंगा जाता था।<sup>5</sup> जूतों को बांधने के लिये चमड़े से ही विभिन्न प्रकार के फीते भी बनाये जाते थे।<sup>6</sup>

**वस्त्र शिल्प** :- भारतीय संस्कृति का दूसरा महत्वपूर्ण शिल्प वस्त्र शिल्प है। ऋग्वेद के एक मंत्र में वस्त्र शिल्पियों के लिये वासोवाय<sup>7</sup> शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है तथा महिला बुनकर के लिये सिरि<sup>8</sup> शब्द का प्रयोग किया गया है। नर्तकियों द्वारा कढ़े हुये वस्त्र पहनने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कढ़ाई का कार्य सम्भवतः स्त्रियों द्वारा ही किया जाता रहा होगा। उत्तर वैदिक काल में महिला बुनकर के लिये वयित्री शब्द का प्रयोग किया जाता था। चूंकि वस्त्र का निर्माण तन्तु<sup>10</sup>(धागा) से होता है, अतः इस शिल्प से जुड़े शिल्पी को तन्तुवाय<sup>11</sup> अथवा जुलाहा भी कहा जाता था। कई स्थान अपने विशिष्ट वस्त्र उद्योग के लिये प्रसिद्ध हो चुके थे। कौटिल्य ने स्थानों के आधार पर 'मागाधिक'(मगध में निर्मित) 'काशिक'(काशी में निर्मित) इत्यादि में वस्त्रों का वर्गीकरण किया है।<sup>12</sup> काशी रेशम वस्त्रों के निर्माण के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ के बनारसी साड़ियों के आकर्षक कढ़ाई को वास्तु

शिल्प के शिल्पियों ने भवन निर्माण में शिल्पाकित किया है। आचारांग सूत्र में रूई से बने वस्त्रों का उल्लेख मिलता है।<sup>13</sup>

**प्रस्तर शिल्प** :- पत्थरों को विभिन्न आकारों में तोड़कर उसे एक कलाकृति का रूप देना प्रस्तर शिल्प के अन्तर्गत आता है। इससे सम्बन्धित शिल्पी को **पाषाणकुट्टक** कहा जाता था। पत्थरों के कलात्मक स्तम्भ तथा कलात्मक दिवारें बनायी जाती थी।<sup>14</sup> पत्थरों को सुन्दर, सुघड़ और तीक्ष्ण रूप में काटकर भवन, प्रासाद, स्तूप तथा विहार आदि बनाये जाते थे। कभी-कभी पत्थरों को इतना नुकीला और तीक्ष्ण बनाते थे, जो किसी भी जानवर को मार सकता था।<sup>15</sup>

**धातु शिल्प** :- धातु शिल्प भी पर्याप्त रूप से महत्वपूर्ण था। समाज में 'लौहकार' और 'स्वर्णकार' दो पृथक वर्ग के रूप में अस्तित्व में थे।<sup>16</sup> पूर्व वैदिक युग में धातु शिल्पियों के लिये 'कर्मार'<sup>17</sup> शब्द का प्रयोग किया गया है जो धातु को गलाकर दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का भी निर्माण करते थे। ऋग्वेद में भोजन बनाने का पात्र, प्याले, परशु और फाल<sup>18</sup> आदि वस्तुओं का उल्लेख है जिनका निर्माण कर्मार द्वारा किया जाता था। वैदिक साहित्य में **हिरण्यकार** शिल्पी का भी उल्लेख प्राप्त होता है<sup>19</sup> जो स्वर्ण से विभिन्न प्रकार के आभूषणों का निर्माण करते थे। अथर्ववेद में हिरण्य शब्द का तात्पर्य स्वर्ण आभूषणों से लगाया गया है।<sup>20</sup> अथर्ववेद तथा शतपथ ब्राह्मण में भी स्वर्णाभूषणों के निर्माण का उल्लेख है। हल, छूरा, चाकू आदि विभिन्न वस्तुयें लोहार बनाता था। यही नहीं वह युद्ध सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्र भी तैयार करता था।

बौद्ध काल में धातु शिल्प से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों को **कम्मार** की संज्ञा भी दी जाती थी। ये (लोहार) लोहे के बड़े-बड़े पात्र बनाते थे। ऐसे ही एक पात्र में तेल भरकर बुद्ध के पार्थिव शरीर को रखा गया था।<sup>21</sup> लोहे का उपयोग क्षेत्र बड़ा होने के कारण लोहारों का कार्यक्षेत्र भी व्यापक था और इसी कारण इन्हें समाज में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। दीघनिकाय में

उल्लिखित है कि चण्ड कम्मारपुत्त के पास अपार धन और सघन आमकानन था, जिसमें बुद्ध ने विश्राम किया था तथा उसी के घर बुद्ध ने अपना अन्तिम भोजन भी ग्रहण किया था।<sup>22</sup>

**चित्रांकन शिल्प** :- प्राचीन भारतीय साहित्य में चित्रकला के बारे में जो वर्णन और वर्गीकरण प्राप्त होता है, वह आधुनिक परिभाषा और वर्गीकरण की कसौटी पर कसना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वह परिभाषा और वर्गीकरण भ्रामक होगा।

वैदिक युग में भी चित्रकला का शिल्प के अन्तर्गत ही उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनी की अष्टाध्यायी में शिल्प के अन्तर्गत जिन कलाओं को समाहित किया गया है वे चित्रांकन, मूर्तिनिर्माण, नृत्य, संगीत अथा वाद्य आदि हैं जो ललित कला के अन्तर्गत आते हैं।<sup>23</sup> विश्व प्रसिद्ध अजन्ता के गुफा चित्र विश्व के सात आश्चर्यों में से एक माने गये हैं। अजन्ता में एक गुफा की छत में एक सफेद रंग का लम्बे बालों और नीली आँखों वाले कुत्ते का बच्चा चित्रांकित है। इसे आगे-पीछे, दायें-बायें किसी भी तरफ से देखने पर यह आपको ही देखता हुआ नजर आयेगा। इसी गुफा की एक पार्श्व दीवार पर चार मृगों को चित्रांकित किया गया है जिनके मुख एक ही है। आप जिस मृग के साथ उसे देखेंगे वह उसी मृग का मुख प्रतीत होगा।

**मृत्पात्र शिल्प** :- कलाकारों में बहु चर्चित व्यक्तित्व कुम्भकार था। जो अपनी जीविका के लिये पूर्णतः मृत्पात्रों के निर्माण पर निर्भर था। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर कुम्भ<sup>24</sup> का उल्लेख प्राप्त होता है जिनका निर्माण कच्ची अथवा पक्की मिट्टी से कुम्भकार द्वारा किया जाता था। कालान्तर में अनेक ग्रन्थों में मिट्टी के बर्तन बनाने वाले के लिये **कुलाल**<sup>25</sup> अथवा **कौलाल**<sup>26</sup> शब्द का प्रयोग हुआ है। वैदिक साहित्य में अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का उल्लेख है जिससे पता चलता है कि पूर्व वैदिक काल में लोगों को मिट्टी के पात्र बनाने की जानकारी हो चुका थी। मज्झिमनिकाय में उल्लेख प्राप्त होता है कि कुम्भकार मिट्टी को अच्छी तरह से घोटते थे तत्पश्चात् उससे इच्छित बर्तनों का निर्माण करते थे।<sup>27</sup> कुम्भकार मिट्टी के बहुमुखी

उपयोग वाले बर्तनों का निर्माण करते थे और जनसाधारण से लेकर राजमहलों तक अपनी सेवा के लिये प्रसिद्ध थे। वे प्रायः शहर या गाँव से बाहर रहते थे, यह उनके कार्य के अनुकूल भी था, क्योंकि गाँव या शहर के मध्य रहते हुये उन्हें अच्छी कच्ची मिट्टी की प्राप्ति में कठिनायी हो सकती थी और स्थानाभाव के कारण वे अपने उद्योग का वांछित विस्तार भी नहीं कर सकते थे।

**काष्ठ शिल्प** :- लकड़ी को काटकर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करने वाले शिल्पकारों के लिये ऋग्वेद में 'तक्षण'<sup>28</sup> शब्द का प्रयोग किया गया है जिन्हें आधुनिक काल में बढई कहा जाता है। पूर्व वैदिक युग में विभिन्न वस्तुओं के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है जिनमें रथ<sup>29</sup>, नौका तथा वाद्ययन्त्र<sup>30</sup> आदि प्रमुख हैं। बैलों तथा अश्वों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी का निर्माण भी बढई के द्वारा ही किया जाता था। काष्ठकार लकड़ी के छोटे-छोटे सामानों से लेकर तरह-तरह के वाहनों तक का निर्माण करते थे और इसके माध्यम से वे अपनी कलात्मक प्रतिभा का भरपूर परिचय देते थे। बौद्ध काल में भिक्षुओं के लिये धातु पात्रों (लोहे के पात्रों के छोड़कर) का व्यवहार वर्जित किया गया था अतः वे अपने उपयोग हेतु सभी प्रकार के लकड़ी के पात्रों का व्यवहार करते थे। घरेलू उपयोग के लिये बढई काठ की पादुका का भी निर्माण करते थे। काठ की पादुका का व्यवहार भिक्षुओं के लिये वर्जित था।<sup>31</sup> आरामदेह पलंग, पालकी, कुर्सी, आसन आदि वस्तुओं का निर्माण भी बढई के द्वारा किया जाता था। सम्पन्न बढइयों और लकड़ी के व्यापारियों को **दारुकाम्भिक** कहा गया है। उनके नाम के आगे **गहपति** शब्द मिलने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे सर्वसाधन सम्पन्न थे।

प्राचीन भारत में शिल्पियों को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। वेदों में उनको नमस्कार, सत्कार तथा आदर करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद<sup>32</sup> के 16वें अध्याय में उनके लिये निम्न प्रकार के सत्कार वचन कहे गये हैं—



1. न नमो रोहिताय स्थपतये— ऐश्वर्य वृद्धिकारक शिल्पाध्यक्ष के लिये सत्कार हो ।
2. नमस्तक्षभ्य— शिल्पियों के लिये नमस्कार हो ।
3. रथकारेभ्यश्च वो नमः — विविध प्रकार के रथ, यान आदि बनाने वाले के लिये नमस्कार हो ।
4. नमः कुलालेभ्यः — मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्हारों के लिये नमस्कार हो ।
5. कर्मारेभ्यश्च वो नमः — लाहे के विविध प्रकार का कार्य करने वाले महापुरुषार्थी जन लुहारों के लिये नमस्कार हो ।
6. नमो वास्तव्याय च — गृह निर्माण में कुशल के लिये नमस्कार हो ।
7. नम इशुकृद्भ्य — बाण आदि प्रक्षेपणास्त्र बनाने वालों के लिये नमस्कार हो ।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर अध्ययनोपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में शिल्पकारों तथा शिल्पकला का न केवल सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्व था, अपितु वे तत्कालीन अर्थव्यवस्था के मजबूत आधार स्तम्भ थे ।

**सन्दर्भ —**

1. मालविकाग्निमित्र 1.6, मृच्छकटिकम् 3.5 ।
2. वाजसनेयी संहिता 1.33.6—10 ।
3. चुल्लवग्ग पृ0 205.18 ।
4. महावग्ग पृ0 204.25 ।
5. विनय पिटक हिन्दी अनुवाद पृ0 204 ।
6. महावग्ग पृ0 204.25, 205.3 ।
7. वही, पृ0 205.9—12 ।
8. ऋग्वेद 10.26.6 ।
9. वही, 1.126.1 ।
10. चुल्लवग्ग पृ0 225.8 ।

11. वही, पृ० 225.27 ।
12. अर्थशास्त्र पृ० 81—85 ।
13. आचारांग सूत्र 2.5.1.14 ।
14. चुल्लवग्ग 5.17.2 ।
15. बब्बु जातक 1.478.479 ।
16. बौधायन श्रौत सूत्र 6.13 ।
17. अविनाश चन्द्र दास, ऋग्वैदिक कल्चर, कलकत्ता, 1925, पृ० 212 ।
18. ऋग्वेद 9.11.22, 10.30.15, 1.162.20, 1.58.4 ।
19. ऋग्वेद 1.43.5 ।
20. अथर्ववेद 20.15.2 ।
21. दीघनिकाय द्वितीय 3.24.103 ।
22. वही, 3.19.62 ।
23. अष्टाध्यायी : पाणिनी 3.1.146, 3.2.55 ।
24. ऋग्वेद 4.32.19 ।
25. वही, 6.2.8 ।
26. वाजसनेयी संहिता 16.27 ।
27. मज्झिमनिकाय द्वि, 27.3.20 ।
28. ऋग्वेद 10.97.20 ।
29. वैदिक इण्डेक्स, भाग—2, पृ० 118 ।
30. ऋग्वेद 10.85.10, 3.53.20 ।
31. महावग्ग 5.7.15 ।
32. यजुर्वेद 16.19—46 ।

## गुप्तकालीन साहित्य तथा कला में नृत्यरत नारियाँ

\* डॉ० आयशा फ़ातमी

संक्षिप्तिका:

भारतीय इतिहास में गुप्तवंश का शासन अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। गुप्तकालीन शांति एवं सुव्यवस्था के वातावरण में साहित्य तथा कला को विकसित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। साहित्य और कला में 'नारी' को एक महत्वपूर्ण प्रतिमान के रूप में स्थान मिला है। देवी मूर्तियों के अतिरिक्त लौकिक जीवन की विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करती हुई स्त्रियों का प्रचुर अंकन हुआ है। इसमें नृत्य एवं संगीत में रत नारियाँ विशिष्टतया अंकित की गयी हैं जिनमें रूप, भाव तथा भंगिमाओं का सुंदर समन्वय दिखायी देता है। प्रस्तुत शोधपत्र में गुप्तकाल में साहित्य तथा कला दोनों ही क्षेत्रों में 'नृत्यांगना' रूप में नारी चित्रण के उदाहरणों को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

लौकिक रूप में नारी चित्रण की एक क्रमबद्ध और दीर्घकालिक परम्परा भारतीय कला तथा साहित्य में दिखायी देती है किन्तु गुप्तकाल में यह परम्परा और अधिक विकसित हुई। गुप्तकालीन साहित्यकारों ने मानव जीवन में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका को सराहा। जहाँ साहित्य में नारी सौन्दर्य का श्रृंगारिक वर्णन किया गया है, वहीं तत्कालीन कलाकारों द्वारा चित्र तथा मूर्तिकला के माध्यम से नारी सौन्दर्य के विविध रूपों को प्रदर्शित किया गया है। साहित्य में वर्णित रमणियों का अंकन गुप्तकाल में देवप्रासादों, गुहाओं, नाट्यमण्डपों तथा अन्य विशिष्ट स्थलों पर मुख्यतः अलंकरण हेतु किया गया है, जहाँ इनकी स्वाभाविक श्रृंगारिक चेष्टाओं, सहज प्रवृत्तियों, विभिन्न क्रियाकलापों आदि को अतिरिक्त आकर्षण देने हेतु इन्हें नृत्य की भी विभिन्न मुद्राओं में अंकित किया गया है।

\* सहायक प्रोफेसर—प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

गुप्तकाल में नृत्य एवं संगीत कला परम्परा का अभिजात एवं परिष्कृत रूप परिलक्षित होता है। इनकी व्यापकता साहित्य, अभिलेख व कला के विविध साक्ष्यों से मिलती है। 'मृच्छकटिक' के रचयिता, किञ्चित् पूर्ववर्ती शूद्रक (लगभग तीसरी शती ई०)<sup>1</sup> ने तथा रघुवंश, कुमारसंभव, ऋतुसंहार तथा मेघदूत नामक काव्यों एवं मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटकों के सृजनकर्ता महाकवि कालिदास (लगभग चौथी—पांचवीं शती ई०)<sup>2</sup> ने अपनी रचनाओं के द्वारा पीढ़ियों के दाय में मिली संगीत एवं नृत्यकला की प्राचीन भारतीय परम्पराओं के संवर्धन का कार्य किया। "इन कृतियों में पग—पग पर संगीत एवं नृत्यकला विषयक उल्लेखों से इनके रचनाकारों की नृत्यकलाभिज्ञता का बोध तो होता ही है, साथ ही तत्कालीन समाज में नाट्यशास्त्रीय परम्परा के व्यापक प्रचार का पता भी चलता है। विभिन्न प्रकार के नृत्यों—सामाजिक तथा देशी नृत्य, वारवनिताओं के नृत्य तथा शिक्षण द्वारा प्राप्त पारम्परिक शास्त्रीय नृत्य का एकल प्रस्तुतियों व समूहनर्तन का, रंग परम्परा में नृत्यकला के अनिवार्य स्थान का, नर्तन के दोनों प्रकारों—नृत्य प्रधान एवं अभिनय प्रधान, नृत्य के दोनों प्रयोगों—सुकुमार लास्य एवं ताण्डव का नृत्यकला से सम्बन्धित व्यक्तियों एवं अन्य सामाजिक प्रथाओं का तथा इन कलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का परिचय भी इनमें मिलता है।"<sup>3</sup> नृत्य एवं नाट्य के अधिकृत विद्वान के रूप में मालविका के नृत्यगुरु गणदास की निम्न उक्ति से नाट्य कला के प्रति तत्कालीन समाज के उदात्त दृष्टिकोण की झलक मिलती है—

देवानामिदामामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं  
 रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गो विभक्तं द्विधा।  
 त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते  
 नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।<sup>4</sup>

अर्थात् "नाट्य के प्रति हमारा गौरव मिथ्या नहीं है। ऋषि एवं देवता उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और नेत्रों को तृप्त करने वाला आनन्दमय कर्मकाण्ड....'चाक्षुष यज्ञ मानते हैं। इसी कला के लिये रुद्र ने अपने शरीर

को दो भागों (ताण्डव व लास्य के प्रदर्शन हेतु धारण किया गया शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप) में विभक्त किया है। नाट्य तीन लोक वासियों की अभिरुचियों, क्रियाओं एवं भावों का अनुकरण करता है।<sup>5</sup>

डॉ० मलैया सुधा के शब्दों में— “नृत्यप्रयोग में कुशल उच्चकोटि की नृत्यांगना, मृच्छकटिक की नायिका गणिका बसंतसेना, विलासी राजा अग्निवर्ण की राजसभा में उपस्थित गन्धर्वविद्या में पारंगत नर्तकियां, रघु के जन्मोत्सव पर आमंत्रित तथा हर्ष की सभा की वारवनिताएं... इत्यादि उल्लेखों से ‘गणिकाओं’ के लिये संगीत एवं नृत्यादि कलाओं में निपुण होने की अनिवार्यता का ज्ञान होता है। इससे यह भी पता चलता है कि गणिकाओं को समाज के महत्वपूर्ण सदस्य के रूप में समुचित आदर प्राप्त था और विभिन्न उत्सवों पर समागत अतिथियों के मनोविनोदार्थ वारवनिताओं को आमंत्रित किया जाता था।<sup>6</sup>

गन्धर्व विद्या की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशिकाओं तथा इन्द्र की राजसभा की, स्वयं भरतमुनि द्वारा प्रशिक्षित दिव्य नर्तकियों, अप्सराओं तथा यक्षियों<sup>7</sup> का उल्लेख भी ऋषियों तथा कुमारों<sup>8</sup> की तपस्या भंग करने अथवा सार्वभौमिक महत्व के विशिष्ट मंगल अवसरों पर गायन, वादन व नर्तन करने<sup>9</sup> इत्यादि के प्रसंग में अनेक स्थलों पर आया है। अभिज्ञानशाकुंतल तथा विक्रमोर्वशीय की तो नायिकाएं ही क्रमशः मेनका अप्सरा की पुत्री शकुन्तला एवं पुरुरवा के प्रेम में आसक्त उर्वशी नामक अप्सरा है। डॉ० सुधा कहती हैं— “नृत्याचार्य गणदास के पास नृत्य के नित्य प्रति अभ्यास को जाती हुई सुपात्रा मालविका, सौन्दर्यशालिनी एवं ललित कलाओ में निपुण राजा अज की पत्नीरूपी योग्यतम शिष्या इन्दुमति, अलकापुरी की गरिमामय नर्तन करती हुई नारियां... हर्ष के जन्मोत्सव पर नृत्यरत महल की वृद्ध दासियां, शूद्र दासियां, उच्चकुल की नारियां एवं प्रतिहारियां आदि उल्लेखों से पता चलता है कि केवल वारवनिताएं अथवा पेशेवर नर्तकियां ही नहीं, अपितु राजवंशीय रानियों से लेकर अभिजात एवं निम्न वर्ग की नारियां भी नृत्य एवं संगीत में कुशल थीं एवं ललित कलाओं में गहन रुचि रखती थीं।<sup>10</sup> कुमारगुप्त एवं

बन्धुवर्मन के मन्दसौर अभिलेख<sup>11</sup> से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है जिसके अनुसार दशपुर नगर, गन्धर्वों के समान निरन्तर गायन करने वाली नारियों से सज्जित था।

नारद एवं तुम्बरु की समता करने वाले संगीतप्रेमी महान गुप्त सम्राटों ने इन ललित कलाओं को अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया। इन्हें संगीत प्रेम, अपने कलाप्रिय मातृकुल लिच्छवि वंश से, वंशगत संस्कारों के रूप में जन्मजात मिला। समुद्रगुप्त<sup>12</sup> एवं कुमारगुप्त<sup>13</sup> प्रथम के वीणांकित सिक्के उनके गहन संगीत प्रेम के निर्दोष साक्ष्य हैं। भितरी स्तम्भलेख<sup>14</sup> समुद्रगुप्त को संगीत की विभिन्न तानों में दक्ष बताता है। निरन्तर युद्धों में लीन रहने वाले कुशल शासक एवं दिग्विजयी गुप्त सम्राटों के इस श्लाघनीय कलाप्रेम का निश्चय ही समाज में उन कलाओं के प्रति एक उदात्त सामाजिक दृष्टिकोण निर्मित करने में महती योगदान रहा होगा।

अपने पात्रों के नृत्यप्रदर्शन के माध्यम से नृत्याचार्य गणदास तथा हरदत्त की श्रेष्ठता का निर्णय करने वाली निर्णायिका बौद्धभिक्षुणी अथवा परिव्राजिका<sup>15</sup> बौद्ध मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का सूचक है। इससे सिद्ध होता है कि बौद्ध साहित्य का संगीत एवं नृत्यकला के प्रति प्रारम्भिक निषेधात्मक दृष्टिकोण शृंगकाल तक आते-आते, इस सीमा तक सकारात्मक हो चुका था कि बौद्ध मतावलम्बी गृहस्थ ही नहीं, बौद्ध भिक्षु व भिक्षुणी भी संगीत व नृत्य की विधिवत शिक्षा ग्रहण करते थे, और उसमें इतने कुशल होते थे कि वे किसी नृत्य स्पर्धा का निर्णायक पद ग्रहण कर सकें। भरहुत व सांची से लेकर अजन्ता एवं बाघ के उल्लासमय संगीत-नृत्य दृश्यों में इसी परिवर्तन की अनुगूँज सुनाई देती है।

वस्तुतः उपर्युक्त सभी कृतियों में प्रत्यक्ष रूप से संगीत-नृत्य विषयक विपुल जानकारी संग्रहीत है। इनके माध्यम से तत्कालीन समाज का जो शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें देवी-देवता, अप्सरा, गन्धर्व, गणिकाएं, कुलांगनाएं, राजा रानियां, कुमार-कुमारियां, स्वामिनी-दासियां, बालक-वृद्ध और यहाँ तक कि पशु-पक्षी एवं स्वयं प्रकृति भी नृत्य व संगीत

के मधुर रस में आप्लावित हैं।

वर्तमान में अभी तक ज्ञात कलाविषयक सामग्री के अन्तर्गत गुप्तकालीन कलाकेन्द्रों में पवाया(प्राचीन पद्मावती) देवगढ़, नचनाकुठार, मण्डसौर, अजन्ता तथा बाघ आदि से नृत्य से सम्बन्धित दृश्य प्राप्त हुए हैं। तत्कालीन कलावशेषों में नृत्य एवं संगीतरत नारियों के कुछ प्रमुख दृश्यों का विवरण निम्नवत् है—

1. पवाया, ग्वालियर से प्राप्त एक पाषाण फलक<sup>16</sup> में स्त्रियों के समूह को नृत्य तथा संगीत में मग्न दिखाया गया है। यहां किसी पुरुष सहायक का अंकन नहीं है। सभी प्रकार के नृत्य एवं संगीत से सम्बन्धित कार्य स्त्रियों द्वारा ही सम्पन्न किये जा रहे हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में स्त्रियां, नृत्य एवं संगीत की सभी विधाओं में पारंगत होती थीं। मध्य में अंकित स्त्री अपने हावों—भावों तथा अंगों के सुकोमल प्रयोग से नृत्यकला में प्रवीण प्रतीत होती हैं। दोनों ओर किनारे बैठी स्त्रियां संभवतः वीणा के आकार का कोई वाद्ययन्त्र बजा रही हैं। ऊपर अंकित स्त्रियां भी किसी न किसी प्रकार से संगीत तथा नृत्य के इस कार्यक्रम में अपना सहयोग कर रही हैं। इसमें दाहिने किनारे की स्त्री संभवतः मृदंग बजा रही है। सभी स्त्रियों के मुखों पर परमसंतोष, गुप्तकालीन की विशिष्ट विशेषता 'कला में देवत्व की भावना' को उजागर करता है।

इस प्रकार गुप्तकालीन कला के सर्वश्रेष्ठ निदर्शनों में से एक, इस सुप्रसिद्ध और बहुचर्चित शिलापट्ट का सौन्दर्यशास्त्रीय<sup>17</sup> महत्व निर्विवाद है, किन्तु इसका सर्वाधिक महत्व नृत्य तथा संगीत की दृष्टि से है। यह एक ऐसा अनूठा वातायन है, जिसके माध्यम से गुप्तकालीन परिष्कृत एवं कलाप्रिय रसिक समाज की समस्त संगीत—नृत्य सम्बन्धी गतिविधियां एक बारगी ही देखी जा सकती हैं। यह गुप्तकालीन कला के ही नहीं, अपितु प्राचीन भारतीय कला

के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है, जिसमें सम्पूर्ण कुटप (आर्केस्ट्रा) के साहचर्य में 'मार्गनर्तन' का ऐसा सुंदर मूर्त्यांकन हुआ है। इस शिलापट्ट में भरहुत, सांची, अमरावती व नागार्जुनकोण्ड से प्रवाहमान जीवन्त परम्परा, शिल्पकला व नृत्यकला दोनों की दृष्टि से अपने परिष्कृत रूप में अभिव्यक्त हुई है।

2. अजन्ता की गुफा सं० 26 के एक पाषाण अंकन में स्त्रियां ही सम्पूर्ण दृश्य पर छाई हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है यह स्त्रियां अपने भावों, अंग-विन्यास तथा शारीरिक गतिविधियों से बुद्ध की तपस्या भंग करने का प्रयास कर रही हैं<sup>18</sup>। यद्यपि दृश्य में बुद्ध दिखायी नहीं देते, किन्तु अजन्ता की कला, चूंकि बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है और स्त्रियों की भंगिमाएं कामुक प्रतीत होती हैं, तो संभव है यह उसी समय का चित्रण हो जब बुद्ध को लौकिक जीवन में रत करने हेतु विषयसुखों की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास किया जा रहा था। इसमें मध्य वाली नर्तकी की भावभंगिमा अत्यन्त कामुक प्रतीत होती है। विशिष्ट शिरोभूषा के साथ इस मूर्ति के शरीर में वस्त्र नहीं दिखाई दे रहा है। कटि में मेखला स्पष्ट है। गले में मोटे-मोटे कण्ठाभूषण दिखाई दे रहे हैं। स्त्री त्रिभंगमुद्रा में खड़ी है, और हाथ नृत्य की मुद्रा में हैं। उसकी सहयोगी स्त्रियां भी अपना अपना कार्य भली भांति कर रही हैं और नारी सौन्दर्य का समग्र रूप प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हैं। बायें किनारे की स्त्री जो मुखाकृति से अत्यन्त सुंदर प्रतीत होती है, मृदंग जैसा कोई वाद्ययन्त्र बजा रही है। सभी स्त्रियों का सौन्दर्य देखते ही बनता है।
3. देवगढ़ (झांसी) से प्राप्त पाषाण के एक मूर्तन में एक नृत्यांगना को चार सहायिकाओं के साथ अंकित किया गया है।<sup>19</sup> ये सहायिकाएं अपने हाथों में कोई वाद्ययन्त्र लिये हैं, जिन्हें वे बजा रही हैं और जिसकी धुन पर मध्य की नायिका नृत्य कर रही हैं। इन स्त्रियों के मुखों तथा होठों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः यह



समूहगान कर रही हैं और गाने तथा वाद्य की धुन पर नृत्य किया जा रहा है। सभी की शिरोभूषा विशिष्ट है। कानों में बड़े-बड़े कुण्डल दिखायी देते हैं। गले में हार तथा बा.जुओं में भुजबन्द दिखायी देता है। मध्य की स्त्री स्कर्टनुमा वस्त्र पहने है, जिसमें लहरियादार डिज़ाइन है। दोनों किनारों वाली स्त्रियां धोतीनुमा वस्त्र पहने है, जिनमें से दाहिने किनारे वाली स्त्री के स्थूल शरीर पर (कटिप्रदेश) रेखा बनी हुई है। मध्य नायिका के समीप के दोनो ओर की स्त्रियां संभवतः लहंगेनुमा अथवा पेटीकोट के प्रकार का कोई वस्त्र पहने हैं। शरीर का ऊपरी भाग निर्वस्त्र है। यहां यह ध्यातव्य है कि स्त्रियों के शरीर में वह लोच और कमनीयता नहीं है, जो पवाया के नृत्य समूह में दिखायी देती है। स्त्रियों का शरीर स्थूल है, और सुंदरता के उस मानदण्ड पर खरी नहीं उतरती जिसके लिये गुप्तकलाकार जाना जाता है, परन्तु उनके मुखों की शांति तथा परम संतोष उन्हें, 'कला में देवत्व की भावना' को समन्वित करने में पूर्ण सफल बनाता है।

4. अजन्ता की पहली गुफा की एक समूची भित्ति पर बारह फिट ऊँचा और आठ फिट लम्बा 'मार-विजय' का चित्रांकन है। इस दृश्य में तपस्या में लीन सिद्धार्थ को 'मार' (कामदेव के समान तपस्या भंग करने वाला बौद्ध देवता) की सेना तथा उसकी रूपवती कन्याएं क्षुब्ध और लुब्ध करते हुए अंकित की गयी हैं।<sup>20</sup> इस दृश्य में मार की सेना की वीभत्सता के साथ-साथ इन नृत्य रत कुमारियों का सिद्धार्थ को प्रलोभित करने का निष्फल प्रयास किया जा रहा है। स्त्रियां अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा भाव भंगिमाओं के साथ इस चित्र में अंकित की गयी हैं, परन्तु उनका यह कामुक भाव प्रकटीकरण सिद्धार्थ को उनके पथ से विचलित करने में असमर्थ प्रतीत होता है। भारतीय कला में यह चित्र शांतरस की अद्भुत एवं सफल अभिव्यक्ति है।

5. बाघ की गुफा सं० 4 से प्राप्त एक दृश्य में स्पष्ट रूप से आकृतियों के दो समूह हैं जो एक के ऊपर एक बनाये गये हैं। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये एक ही प्रसंग के चित्र हैं या एक ही दृश्य की घटना है। ऊपर वाले भाग में छः पुरुष आकृतियां हैं जो हवा में उड़ रही हैं और बादलों से आच्छादित हैं। नीचे वाले भाग में केवल पांच सिर शेष बचे हैं जो स्पष्ट रूप से गायिकाओं के चित्र हैं क्योंकि बीच वाली स्त्री के हाथ में वाद्ययंत्र है। इन स्त्रियों के केश जूड़े में बंधे हैं। इस चित्र में नीले रंग से जड़ाऊ आभूषण बनाये गये हैं, यह नीला रंग लेपिसलाजुली है, जिसका प्रयोग अजन्ता के चित्रों में भी किया गया है।<sup>21</sup> यह रंग उस समय फारस से आयात किया जाता था।
6. इसी गुफा के एक अन्य चित्र में स्त्री गायिकाओं के दो दलों को चित्रित किया गया है। यह चित्र बाघ के समस्त चित्रों में अपनी मण्डलाकार व्यवस्था, लय तथा सुंदरता के कारण प्रसिद्ध है। पहले दल में सात स्त्रियां एक अन्य आठवीं नर्तकी को चारों ओर से घेरे खड़ी हैं।<sup>22</sup> नृत्य करने वाली स्त्री पूरी आस्तीन का चुस्त कुर्ता पहने है जो घुटने तक नीचा है। तीन स्त्रियां डण्डे बजा रही हैं। एक मृदंग बजा रही है, और शेष तीन मजीरे(ताल) बजा रही हैं। ये स्त्रियां या तो ऊपरी भाग में आस्तीनदार चोली पहने हैं या ऊर्ध्व भाग में नग्न हैं।

दूसरे दल में एक नर्तकी को घेरे छः स्त्रियां हैं, जो कि गायिकाएं हैं। ये मण्डलाकार रूप में खड़ी हैं। नर्तकी के बाल कंधों पर लहरा रहे हैं। वह चुस्त कुर्ता तथा पतला पाजामा पहने है। शेष छः गायिकाओं में से एक मृदंग बजा रही है, दो छोटे-छोटे मजीरे बजा रही हैं और शेष तीन डण्डे बजा रही हैं। इनकी वेशभूषा पहले वाली गायिकाओं के दल के समान ही है।<sup>23</sup>

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तकाल में नृत्य तथा संगीत को अत्यधिक महत्व प्राप्त था। इन कलाओं में विभिन्न वर्ग की नारियां

न केवल रुचि लेती थीं, अपितु पारंगत भी होती थीं ।

संदर्भ —

1. मृच्छकटिक का रचनाकाल विवादास्पद है, किन्तु अधिकांश विद्वान इसे तीसरी शती ई० की रचना मानते हैं ।
2. कालिदास के काल निर्धारण के संदर्भ में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं । विद्वानों का एक वर्ग इन्हें प्रथम शती ई० में मानता है तथा दूसरा वर्ग लगभग चौथी पाँचवीं शती ई० का । यहां द्वितीय मत माना गया है ।
3. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ० मलैया सुधा, पृष्ठ 252
4. मालविकाग्निमित्र, कालिदास, संपा० पी० एस० साणे, एवं जी० गोंडबोले, बम्बई, 1950, 1.4
5. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ० मलैया सुधा, पृष्ठ 252, रघुवंश, कालिदास वाराणसी 1961 अध्याय 19
6. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ० मलैया सुधा, पृष्ठ 252
7. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ० मलैया सुधा, पृष्ठ 252
8. रघुवंश, वही .....12.40;  
42
9. कुमारसंभव, कालिदास, काशी हिन्दू वि० वि० वाराणसी,,1976,  
11.36
10. प्राचीन भारत में नृत्य एवं संगीत, डॉ० मलैया सुधा, पृष्ठ 253
11. Fleet, corpus Inscriptionum Indicarum-3 pg.81.
12. Altekar, A.S., Catalogue of the Gupta Gold Coins in the Bayana Hoard, Bombay. 1954, pp-56—60,pl. VI, 3--8
13. Altekar A.S., Corpus of Indian coins—The coinage of Gupta Empire. Varanasi, 1957 pl. 14—5.
14. Fleet, वही .....pg. 53.
15. मालविकाग्निमित्र, वही,.....1.16 तथा 2.8
16. Bhadouria, G.S., Women in Indian Art, Delhi, pl. LXXIX.

17. Anand, Mulkraj, "Soveniers of Madhya Pradesh Sculptures", Marg.Bombay, June 1973.pg. 9.
18. Bhadouria, G. S., वही..... Pl. LXXX
19. Bhadouria, G.S. वही..... Pl. LXXI
20. श्रीवास्तव, अशर्फीलाल भारतीय कला, इलाहाबाद, पृष्ठ 172.
21. वर्मा, अविनाश बहादुर, भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली 1984, पृष्ठ 74-75.
22. Marshall, The Bagh Caves in the Gwalior State, 1927,pl- D
23. वर्मा, अविनाश बहादुर, वही,, पृष्ठ 74, रेखाचित्र सं० 11.

## मौर्य साम्राज्य की स्थापना (323 ई०पू०-185 ई०पू०) एक दृष्टि में

\* श्वेता सिंह

चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु विष्णुगुप्त अथवा चाणक्य की सहायता से नंद वंश के अन्तिम शासक घनानंद को हराकर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त मौर्य की जाति के विषय में मतैक्य नहीं है। ब्राह्मण साहित्य इन्हें शूद्र तथा बौद्ध एवं जैन ग्रंथ इन्हें क्षत्रिय कुल में उत्पन्न बताते हैं। विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' में इनके लिए वृषल शब्द का प्रयोग किया गया है। वृषल शब्द का आशय निम्न कुल से हे। रोमिला थापर ने चन्द्रगुप्त मौर्य को वैश्य जाति का माना। यूनानी स्रोत के अनुसार वह साधारण कुल में पैदा हुआ था। स्पूनर महोदय मौर्यों को पारसिक मानते हैं। कार्टिअस, डिओडोरस, प्लूटार्क तथा जस्टिन भी मौर्यों को निम्न जाति का मानते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य की चन्द्रगुप्त संज्ञा का प्राचीनतम अभिलेखीय साक्ष्य रुद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ अभिलेख से मिलता है।

मगध के राजसिंहासन पर बैठकर चन्द्रगुप्त ने एक ऐसे साम्राज्य की नींव डाली जो सम्पूर्ण भारत में फैला था। चन्द्रगुप्त के विषय में जस्टिन का कथन है कि उसने (चन्द्रगुप्त ने) छः लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला और उस पर अपना अधिकार कर लिया। चन्द्रगुप्त मौर्य ने उत्तर-पश्चिमी भारत को सिकन्दर के उत्तराधिकारियों से मुक्त करके, नंदों का उन्मूलन कर, सेल्युकस को पराजित करके संधि के लिए विवश कर, जिस साम्राज्य की स्थापना की उसकी सीमायें उत्तर-पश्चिम में ईरान की सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक एवं पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सोपारा तथा सुराष्ट्र तक फैली हुई थीं। महावंश की टीका में उसे सकल जम्बूद्वीप का शासक कहा गया है। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य विस्तार पश्चिमी भारत में

\* शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भी था। इसी में चन्द्रगुप्त के गवर्नर पुष्यगुप्त का वर्णन है जिसने सुदर्शन झील का निर्माण कराया था। महाराष्ट्र के थाने जिले में सोपारा से प्राप्त अशोक के शिलालेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने सौराष्ट्र की सीमाओं से परे पश्चिमी भारत की अपनी विजय को कोंकण तक विस्तार किया था।

305 ई० पू० में यूनानी शासक सेल्युकस एवं चन्द्रगुप्त के मध्य युद्ध हुआ, जिसमें सम्भवतः सेल्युकस पराजित हुआ। दोनों के बीच सम्पन्न हुई संधि की शर्तें इस प्रकार थीं— सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ अपनी पुत्री हेलना के विवाह में दहेज के रूप में एरिया, अराकोसिया, जेड्रोसिया एवं पेरीपेमिसदाई के क्षेत्रों को दिया। प्लूटार्क के अनुसार चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस को 500 हाथी उपहार में दिये। सेल्युकस ने अपने एक राजदूत 'मेगस्थनीज' को चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा। संभवतः इस संधि के परिणामस्वरूप ही हिन्दुकुश मौर्य साम्राज्य और सेल्युकस के राज्य के बीच की सीमा बन गया।

चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिण भारत की विजय के विषय में जानकारी तमिल ग्रंथ 'अहनानूर' और 'मुरनानूर' तथा अशोक के अभिलेखों से मिलती है। अशोक ने अपने दूसरे और तेरहवें शिलालेखों में अपने साम्राज्य की सीमाओं तथा चोलों, पाण्ड्यों, सतिय-पुत्रों तथा केरलपुत्रों जैसे सीमावर्ती राज्यों का उल्लेख किया है। बंगाल पर चन्द्रगुप्त की विजय महास्थान अभिलेख से पता चलता है। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ तथा स्मिथ का मानना है कि दक्षिण भारत को मौर्य साम्राज्य में बिन्दुसार के समय में मिलाया गया। यूनानी इतिहासकार चन्द्रगुप्त मौर्य को दक्षिण की विजय का श्रेय देते हैं।

अपने जीवन के अन्तिम चरण में चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन साधु भद्रबाहु से जैन धर्म की दीक्षा लेकर श्रवणवेलगोला (मैसूर, कर्नाटक) में स्थित चन्द्रगिरि पहाड़ी पर करीब 298 ई० पू० में उपवास के द्वारा शरीर त्याग दिया। भद्रबाहु पुष्याश्रवक कथाकोष तथाराजा बलि कथा से चन्द्रगुप्त मौर्य के जैन धर्मी होने तथा श्रवणवेलगोला जाने की पुष्टि होती है। यहाँ पर

चन्द्रगुप्त मौर्य ने चन्द्रगुप्त बस्ती का निर्माण करवाया। चन्द्रगुप्त मौर्य एक कुशल योद्धा, सेनानायक तथा महानविजेता के साथ-साथ एक योग्य शासक भी था। विशाल साम्राज्य पर शासन करने वाला वह भारत का प्रथम शासक था। उसने एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित की जिसे परवर्ती भारतीय शासकों ने भी अपनाया। इस शासन की मुख्य विशेषता सत्ता का अत्यधिक विकेन्द्रीकरण, विकसित अधिकारी तन्त्र, उचित न्याय व्यवस्था, नगर शासन, कृषि, शिल्प उद्योग, संचार, व्यापार एवं वाणिज्य की वृद्धि के लिए राज्य द्वारा अनेक कारगर उपाय आदि थे। चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था का चरम लक्ष्य अर्थशास्त्र के निम्नलिखित उद्धरण से व्यक्त होता है प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है और प्रजा की भलाई में उसकी भलाई। राजा को जो अच्छा लगे वह हितकर नहीं है वरन् हितकर वह है जो प्रजा को अच्छा लगे। चन्द्रगुप्त ने अपने विशाल साम्राज्य पर राजधानी पाटलिपुत्र से शासन किया जिसे यूनानी और लैटिन लेखकों ने पालिबोथा, पालिबोत्रा एवं पालिमबोथा नामों से उल्लिखित किया है।

चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य का अगला उत्तराधिकारी बना, इसे यूनानी लेखक अमित्रोचेड्स कहते थे। स्ट्रैबो ने बिन्दुसार को अलिट्रोकेड्स कहा 'वायुपुराण' में इसे मद्रसार तथा जैनग्रंथों में सिंहसेन कहा गया है। प्लीट ने बिन्दुसार को अमित्रघात नाम का अर्थ शत्रुओं का वध करने वाला बताया। जैन परम्परा में बिन्दुसार की माता का नाम दुर्धरा मिलता है।

बिन्दुसार ने दक्षिण विजय की थी या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है किन्तु उसने अपने पिता द्वारा जीते गये क्षेत्रों को पूर्ण रूप से अधुष्ण रखा। 'दिव्यावदान' में बिन्दुसार के समय में तक्षशिला में हुए दो विद्रोहों का वर्णन है। इन विद्रोहों को दबाने के लिए बिन्दुसार ने पहले अपने पुत्र अशोक फिर सुसीम को भेजा। स्ट्रैबो के अनुसार यूनानी शासक एण्टियोकस ने बिन्दुसार के दरबार में डाइमेकस नाम के राजदूत को भेजा। डाइमेकस को मेगस्थनीज का उत्तराधिकारी भी माना जाता है। एथीनिअस नाम के एक

यूनानी लेखक के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि बिन्दुसार ने ऐण्टियोकस से मदिरा, सूखे अंजीर एवं एक दार्शनिक भेजने की प्रार्थना की थी जिसमें से उसने प्रथम दो स्वीकार कर ली थी किन्तु दार्शनिक भेजने से इन्कार कर दिया था। प्लिनी का कथन है कि मिस्र के राजा फिलाडेल्फस (टालमी द्वितीय) ने पाटिलपुत्र में डियानीसिअस नाम के एक राजदूत को भेजा था। प्रशासन के क्षेत्र में बिन्दुसार ने अपने पिता की भाँति ही शासन किया। उसने साम्राज्य को प्रान्तों में विभाजित कर प्रत्येक प्रान्त में कुमार या उपराजा नियुक्त किया। प्रशासनिक कार्यों के लिए महामात्रों की नियुक्तियाँ की। 'दिव्यावदान' के अनुसार अवन्ति राष्ट्र का उपराजा अशोक था। बिन्दुसार की सभा में 500 सदस्यों वाली एक मंत्री परिषद् थी जिसका प्रधान खल्लटक था।

बिन्दुसार आजीवक सम्प्रदाय का अनुयायी था। उसकी राजसभा में आजीवक परिव्राजक निवास करता था। बौद्ध विद्वान तारानाथ ने बिन्दुसार को 16 राज्यों का विजेता बताया। 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' के अनुसार—बिन्दुसार के राज्य का संचालन चाणक्य करता था। चाणक्य ने तीन मौर्य राजाओं के राज्य शासन का संचालन किया था। चाणक्य की मृत्यु के बाद राधागुप्त उसका उत्तराधिकारी बना।

अशोक (273—232 ई० पू०) बिन्दुसार की मृत्यु के उपरान्त अशोक विशाल मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। अशोक के जीवन की प्रारम्भिक जानकारी हमें बौद्ध साक्ष्यों जैसे दिव्यावदान तथा सिंहली ग्रंथों से मिलती है। दिव्यावदान में अशोक की माता का नाम सुभद्रागी मिलता है। सिंहली परम्पराओं के अनुसार अशोक के पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा विदिशा के एक श्रेष्ठी की पुत्री देवी से उत्पन्न हुए थे। उसके अभिलेख में उसकी एकमात्र पत्नी 'कारुवाकी' का उल्लेख मिलता है, जो तीवर की माता थी। सिंहली अनुश्रुति से ही यह ज्ञात होता है कि अशोक ने अपने 99 भाइयों की हत्या की। करीब चार वर्ष के सत्ता—संघर्ष के बाद अशोक का विधिवत् राज्याभिषेक 269 ई०पू० में हुआ, वैसे तो अशोक 273 ई०पू० में ही मगध के



राजसिंहासन पर बैठ चुका था। राज्याभिषेक से संबंधित लघु शिलालेख में अशोक ने स्वयं को बुद्धशाक्य कहा है।

अभिलेखों में अशोक को देवानामपिय, देवानामपियदशि के सम्बोधन से सम्बोधित किया गया है। सर्वप्रथम मास्की अभिलेख में अशोक नाम मिलता है। गुर्जरा लेख में भी इसका नाम अशोक मिलता है। पुराणों में भी अशोक के नाम का उल्लेख मिलता है। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक दोनों के नाम मिलते हैं। भाब्रू लेख में अशोक अपने को मगध का राजा कहता है। बौद्ध ग्रंथों के विवरण के अनुसार अशोक को तक्षशिला एवं अवन्ती प्रान्तों का शासक नियुक्त किया गया था। अपने राज्याभिषेक के सातवें वर्ष में अशोक ने कश्मीर एवं खोतान क्षेत्रों के अनेक भागों को विजित कर मौर्य साम्राज्य में मिलाया। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार अशोक ने कश्मीर में बितस्ता नदी के किनारे श्रीनगर नामक नगर की स्थापना की।

अशोक ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष (लगभग 261 ई० पू०) में कलिंग पर आक्रमण किया। हाथीगुफा अभिलेख से ज्ञात होता है कि सम्भवतः कलिंग पर नंदराज नाम का कोई राजा शासन करता था। उस समय कलिंग की राजधानी तोसली थी। कलिंग युद्ध तथा उसके परिणामों के विषय में अशोक के तेरहवें अभिलेख में विस्तृत वर्णन मिलता है। कलिंग युद्ध के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

1. अशोक ने अपनी साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी नीति के अन्तर्गत स्वतंत्र कलिंग राज्य को जीता।
2. प्लिनी के अनुसार अशोक ने कलिंग को व्यापार—व्यवसाय की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझकर इस पर आक्रमण किया। समुद्र तट के नजदीक होने के कारण इसकी महत्ता विदेशी व्यापार के लिए अधिक थी।
3. तारानाथ के कथनानुसार समुद्री लुटेरे के रूप में चर्चित नागा जाति के लोगों ने, जो कलिंग में निवास करते थे, अशोक की

मणिमुक्ताओं को चुरा लिया था। इसे ही पुनः वापस लेने के लिए अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया। कौटिल्य के अनुसार कलिंग हाथियों के लिए प्रसिद्ध था। इन्हीं हाथियों को प्राप्त करने के लिए अशोक ने आक्रमण किया। अशोक के तेरहवें शिलालेख से स्पष्ट होता है कि युद्ध में करीब एक लाख लोग मारे गये और करीब डेढ़ लाख युद्ध बन्दी बना लिये गये। इस युद्ध में हुए भीषण नरसंहार से अशोक का मन द्रवित हो गया और उसने सदा के लिए युद्ध को त्यागने की घोषणा की। कलिंग मगध साम्राज्य का एक प्रान्त बना लिया गया था राजकुल का राजकुमार वहाँ का उपराजा (वायसराय) नियुक्त कर दिया गया। कलिंग में दो अधीनस्थ प्रशासनिक केन्द्र स्थापित किए गए –

- (1) उत्तरी केन्द्र (राजधानी तोसली)
- (2) दक्षिणी केन्द्र (राजधानी जौगढ़)

कलिंग की प्रजा तथा कलिंग की सीमा पर रहने वाले लोगों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाए, इस सम्बन्ध में अशोक ने दो आदेश जारी किए। ये दो आदेश धौली और जौगढ़ नामक स्थानों पर सुरक्षित हैं। ये आदेश तोसली और समया के महामात्रों तथा उच्च अधिकारियों को संबोधित करते हुए लिखे गए हैं: सम्राट का आदेश है कि प्रजा के साथ पुत्रवत् व्यवहार हो, जनता को प्यार किया जाए, अकारण लोगों को दण्ड तथा यातना न दी जाए। जनता के साथ न्याय किया जाना चाहिए। सीमांत जातियों को आश्वासन दिया गया है कि उन्हें सम्राट से कोई भय नहीं करना चाहिए। उन्हें राजा के साथ व्यवहार करने से सुख ही मिलेगा, कष्ट नहीं। राजा यथाशक्ति उन्हें क्षमा करेगा, वे धम्म का पालन करें। यहाँ उन्हें सुख मिलेगा और मृत्यु के बाद स्वर्ग।

अशोक के अभिलेखों के प्राप्ति स्थलों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका साम्राज्य उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (अफगानिस्तान), दक्षिण में कर्नाटक, पश्चिम में काठियावाड़ एवं पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक फैला था।

असम में अशोककालीन साक्ष्यों के न मिलने से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य से बाहर था। पूर्व में बंगाल तक मौर्य साम्राज्य के विस्तृत होने की पुष्टि उसके महास्थान अभिलेख से होती है। यह अभिलेख ब्राह्मी लिपि में है। यहाँ महावंश के अनुसार अशोक अपने पुत्र को विदा करने के लिए ताम्रलिपि तक आया था। हेवनसांग को भी ताम्रलिपि, कर्णसुवर्ण, समतट, पूर्वी बंगाल तथा पुण्ड्रवर्धन में अशोक के स्तूप देखने को मिले हैं। उड़ीसा के गंजाम से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तथा महाराष्ट्र तक अशोक का शासन था। दक्षिण में येरागुडी, कार्नूल जिले में अशोक के शिलालेख मिले हैं। इसके अतिरिक्त उत्तरी मैसूर के चित्तलदुर्ग इलाके के तीन स्थानों— सिद्धपुर, मास्की तथा जटिंग रामेश्वर में अशोक के लघु शिलालेख मिले हैं। अशोक के शिलालेख में चोल, चेर, पाण्ड्य और केरल राज्यों को स्वतंत्र सीमावर्ती राज्य कहा गया है। अशोक के पांचवें और तेरहवें शिलालेख में कुछ जनपदों तथा जातियों का उल्लेख किया गया है, जैसे—यवन, कम्बोज, नायाक, नामापंक्ति, भोज, पेतानिक, आन्ध्र तथा पुलिंद। 13वें शिलालेख में आटवीं जातियों का उल्लेख किया है जो अपराध करते थे। यह आटवीं प्रदेश बुंदेलखण्ड से लेकर उड़ीसा तक फैला हुआ था। तिब्बती जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है अशोक ने नेपाल में ललितपत्तन नामक एक नगर बसाया था। उसकी पुत्री चारुमती ने देवपत्तन नामक नगर बसाया। नेपाल की तराई से अशोक के दो अभिलेख रुन्मिनदेई एवं निग्लिवा स्तम्भ लेख प्राप्त होते हैं। रुन्मिनदेई अभिलेख से मौर्य काल की स्पष्ट कर नीति की जानकारी मिलती है। रुन्मिनदेई अभिलेख से विदित होता है कि लुम्बिनी यात्रा के अवसर पर उसने वहां भूमि कर की दर 1/6 से घटाकर 1/8 कर दी। कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने भेरी घोष को त्याग कर धम्म घोष को अपनाया अशोक ने लगभग 37 वर्षों तक शासन किया और 232 ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई।

परवर्ती मौर्य शासक—अशोक के निधन के पश्चात मौर्यों का इतिहास अन्धकार में विलीन हो जाता है। अशोक के पश्चात सभी मौर्य

शासक अत्यन्त दुर्बल थे। वायु पुराण के अनुसार अशोक की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र कुणाल ने आठ वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद क्रमशः बंधुपालित इन्द्रपालित, देववर्मा, शतधनुष और वृहद्रथ राजा हुए।<sup>1</sup> मत्स्यपुराण में अशोक के उत्तराधिकारियों की सूची इस प्रकार है—दशरथ, सम्प्रति, शतधन्वन और ब्रह्मद्रथ।<sup>2</sup> विष्णु पुराण में यह सूची इस प्रकार है—सुयशस, दशरथ, संगत, शालिशूक, सामवर्मन, शतधन्वन और वृहद्रथ।<sup>3</sup> दिव्यावदान के अनुसार कुणाल, सम्प्रति, वृहस्पति वृषसेन, पुष्यधर्मन तथा पुष्यमित्र अशोक के बाद राजा हुए।<sup>4</sup> जैन ग्रन्थों में बताया गया है कि अशोक के बाद उसका पौत्र सम्प्रति जो कुणाल का पुत्र था, शासक हुआ।<sup>5</sup> इसमें सिर्फ दो ही नामों का उल्लेख है। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने अशोक के बाद, कुणाल, विगता शोक तथा वीरसेन का उल्लेख किया है।<sup>6</sup> कल्हण की राजतरंगिणी में कहा गया कि कश्मीर में अशोक का उत्तराधिकारी जलौक राज्य करता था।<sup>7</sup> अशोक का एक संभावित उत्तराधिकारी उसका पुत्र तीवर था। इसका ऐतिहासिक प्रमाण है। सामग्री के अभिलेख में उसका अपनी माँ कारुवाकी के साथ उल्लेख हुआ है।<sup>8</sup> विभिन्न ग्रन्थों के तथ्यों में एकरूपता लाना कोई सहज कार्य नहीं है।

वायु, मत्स्य तथा विष्णु तीनों पुराण मौर्य वंश के अन्तिम दोनों शासकों के विशय में एक मत है। यह थे शतधन्वन या शतधनुष जिसने आठ वर्ष तक शासन किया और अन्तिम है वृहद्रथ। यह एक विलासी, अयोग्य तथा दुर्बल शासक था। इस प्रकार अलग-अलग साक्ष्यों में उत्तराधिकार का क्रम भिन्न-भिन्न दिया गया है। लेकिन यह स्पष्ट है कि अशोक के निधन के उपरान्त उसके वंशजों के समय में मौर्य साम्राज्य का तेजी से विघटन एवं पतन हुआ। अन्तिम मौर्य शासक वृहद्रथ को मारकर उसके सेनापति ब्राह्मण जातीय पुष्यमित्र ने मगध का राज्य हस्तागत किया।<sup>9</sup> वृहद्रथ की हत्या के साथ ही 185-180 ई० पू० में महान मौर्य वंश का अंत हो गया।<sup>10</sup>

**सन्दर्भ —**

1. थापर रोमिला, अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, पृ० 181 तथा

- पार्जिटर, डायनेस्टीज आफ द कलिएज, पृ0 29
2. पार्जिटर, पूर्वोद्धृत, पृ0 29, तथा चौधरी हेमचन्द्र राय, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ0 257
3. थापर रोमिला, पूर्वोद्धृत, पृ0 182 तथा पार्जिटर, पूर्वोद्धृत, पृ0 34
4. दिव्यावदान, पृ0 430
5. परिशिष्टपर्वन, जैकोवी, पृ0 34—54
6. तारानाथ—हिस्ट्री आफ बुद्धिज्म, (अनु0 शीफनेर) पृ0 48 तथा शास्त्री, के0 ए0 नीलकण्ठ, नंद मौर्ययुगीन भारत, पृ0 277
7. राजतरंगिणी, (सं0) स्टाइन, पृ0 53, थापर रोमिला, पृ0 183 तथा राय चौधरी हेमचन्द्र, पृ0 257
8. ब्लाख, द इंस्क्रिप्सन्स ऑफ द अशोक, पृ0 159 तथा थापर रोमिला, पृ0 184
9. चौधरी हेमचन्द्र राय, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ0 269
10. थापर रोमिला, पूर्वोद्धृत पृ0, 195.

## साहित्य के प्रांगण में धिरकती हुई गंगा

\* प्रो० ओम् प्रकाश पाण्डेय

भारत की प्राचीनतम नदी गंगा का असंदिग्ध उल्लेख न्यूनतम है ही। ऋक्संहिता के दशम मण्डल (10.75.05) के निम्नलिखित मन्त्र में इसका सर्वप्रथम उल्लेख गंगा की अनादि गरिमा का सुस्पष्ट प्रमाण है—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचतापरुष्या ।

असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥

ऋग्वेद के ही षष्ठ मण्डल में गंगा के तट पर रहने वाले “गाङ्ग्य” शब्द का प्रयोग है। (ऋ० सं० 6.45.1)।

शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11) में दुष्यन्त कुमार भरत की उन विजयों का उद्घोष है, जिन्हें गंगा और यमुना के तटों से किये गये पराक्रम से प्राप्त किया गया था—

‘भरतो दौः षन्तिर्यमुनामनु गंगायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पंचपंचाशतं  
हयान् ।’

ऐतरेय ब्राह्मण (8.23) तथा वैतानसूत्र में भी ये विजयें उल्लिखित हैं लेकिन गंगा के गौरव का समुल्लेख सर्वाधिक तैत्तिरीय आरण्यक (2.20) में है, जहाँ गंगा और यमुना के तटों पर रहने वालों को ‘अभिजात’ माना गया है। यह कृष्णयजुर्वेदीय आरण्यक निश्चित ही गंगा तट पर रचा गया।

‘गं गं’ का उद्घोष करती हुई प्रवाहित होने वाली इस नदी का नामकरण भी इसी आधार पर हुआ।

वेद—काल के अनन्तर, पुराणों के युग में इस नदी क धार्मिक मान्यता में विशेष वृद्धि हुई, जब यह ‘ग’ से आरम्भ पाँच श्रेष्ठतम विभूतियों—गंगा, गायत्री, गणेश, गुरु और गीता के शिखर पर आरूढ़ हुई। जो पुण्य बहुधन—जन और काल साध्य बड़े—बड़े यज्ञों के अनुष्ठान से प्राप्य था, अब गंगा में मात्र एक डुबकी लगाने भर से साध्य हो गया। गंगा तट पर किया गया महीने भर का कल्पवास अनेक जन्मों के पाप—ताप का नाशक मान

\* बी-1/4, विक्रान्तखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ

लिया गया। हिमालय से निकलकर हरिद्वार, प्रयाग और काशी—सदृश अति प्राचीन तीर्थों को अभिषिक्त करती हुई बंगप्रदेश तक यह महानदी भारत के सर्वाधिक भूभाग को अपने जल से सींचकर उपजाऊ बनाती है। गंगा—यमुना का मध्यवर्ती यह भूभाग अन्तर्वेदी कहलाता है, जो कृषि—सम्पदा के रूप में अक्षरशः सोना—चाँदी जैसी उपज ही उपलब्ध कराता है। यह शिव की वह प्रिया है, जो उनके सिर पर चढ़ी रहती है। कहते हैं काशी में दशाश्वमेध घाट के पास बहती हुई गंगा की धारा कदाचित् उमड़कर विश्वनाथ का स्वयं सर्वप्रथम अभिषेक करती थी। प्रयाग में बड़ी बहिन यमुना के कण्ठालिंगन में निमग्न गंगा की छवि कविकुलगुरु कालिदास को कभी इन्द्रनीलमणियों से गुंथी हुई मुक्तामाल लगी है और थोड़ी ही देर में बाद नीले और श्वेतकमलों की सम्मिलित माला प्रतीत होती है, लेकिन अगले ही क्षण में वह भस्म का अंगराग लगाये महाशिव की देह हो जाती है, जिस पर कृष्णवर्णी सर्प लिपटे हुए हैं।

समर्थ और सुयोग्य गुरु की खोज में पूरी काशी को छानते फिर रहे सन्त कबीर की साध भी पूरी हुई इसी गंगा के तट पर जहाँ बहुत सवरे स्नान—हेतु आये स्वामी रामानन्द के चरण घाट की सीढ़ियों पर सायास लेते कबीर के शरीर पर अनायास पड़ गये। खोज पूरी हुई। साधक को सिद्धि मिल गयी। कितने ही सन्तों और साधकों की गंगा की इन्हीं सीढ़ियों पर अध्यात्म—साधना सिद्ध हुई इसका लेखा जोखा जह्नुनन्दिनी की लहरों के अतिरिक्त और किसके पास होगा?

‘शिवताण्डवस्तोत्र’ के रचयिता रावण के लिए यह गंगा ‘निलिम्पनिर्झरी’ (देवनदी) है, जो शिव की जटाओं से टपकती हुई उनके विषपायी कण्ठ को शीतलता ही नहीं प्रदान करती, उस स्थल की पवित्रता भी बनाये रखती है। पण्डितराज जगन्नाथ की दृष्टि में यह गंगा सम्पूर्ण वसुधा का समृद्ध सौभाग्य है, खण्डपरशु शिव का सर्वोत्तम ऐश्वर्य है, श्रुतियों का सर्वस्व है, देवों का मूर्तिमान् पुण्य है और इसका जल अमृत का भी सौन्दर्य है। भरे दरबार में, बादशाह शाहजहाँ से यवन कन्या लवंगी को

पण्डितराज मांग तो लाये, लेकिन इसके बाद उनका जीवन सामाजिक बहिष्कार के कारण असह्य वेदना से ग्रस्त हो गया। गली-गली में असहिष्णुता की बौछार से वे बेचैन हो उठे। लवंगी के प्रति उनके सच्चे प्रेम को पहचानने के लिए कोई तत्पर नहीं हुआ था। किसके सामने अपने प्रेम की परीक्षा देते। याद आयी मां गंगा की। तटवर्ती सर्वोच्च सोपान पर खड़े होकर बोले- 'यह ठीक है माँ! कि मैंने श्वानवृत्ति अपनायी, झूठ बोला, कुतर्क किये,, दूसरों की चुगली खायी- लेकिन तुम पर सदैव आस्था रखी है- अब तुम भी यदि मेरा परित्याग कर दोगी तो मुझे कौन अपनायेगा।

पण्डितराज की गंगा - आस्था फलवती हुई। वे स्वरचित 'गंगा लहरी' का एक-एक श्लोक, एक-एक शिखरिणी पद्य गाते जाते थे, और गंगा की धारा ऊपर उठती जाती थी। अन्तिम पद्य का पाठ पूरा होते ही, घाट पर खड़े लोगों ने साश्चर्य देखा कि स्वयं गंगा ने ऊपर आकर जगन्नाथ के शरीर को भिगोकर अपने बेटे की निर्दोषिता प्रमाणित कर दी।

जगन्नाथ का सारा आहत अहंकार विगलित हो गया। चित्त निष्कलुष हो उठा। अत्यन्त विनम्रता से बोले- माँ गंगे! मैं अपने मूर्ख साथियों के साथ कहाँ-कहाँ नहीं भटका! किस-किस के पास नहीं गया, लेकिन कहीं भी शान्ति नहीं मिली। जाने कब से सो भी नहीं सका। अब मुझे तुम अपनी उस गोद में सुला लो, जो कोमल पवन के प्रवाह से शीतल है-

**पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै-**

**विमूढैः संरन्तुं क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम् ।**

**इदानीमुत्संगे मृदुपटानसंचारशिशिरे**

**चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम् ॥**

अपनी विलक्षण प्रतिभा और विद्वत्ता के बल पर पूरी काशी को ललकार ने वाला, शाहजहाँ के दरबार का वह पण्डितराज, जो भरे दरबार में, उनके ही परिवार की राजकन्या का हाथ माँगने में संकोच नहीं करता, माँ गंगा के सामने पूर्णतया निरीह, निष्कपट और निर्मल चित्त से याचना कर रहा है - माँ गंगे! तुम्हीं मुझे विमल कर सकती हो -



### ‘गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु।’

कितने ही सन्तों और साधकों को जीवन के परम सत्य का साक्षात्कार कराने वाली गंगा। उनकी महीयसी और चिरन्तन उपलब्धियों के सपनों को साकार किया है इसकी जलधारा ने। कहते हैं, शास्त्रों के वैदुष्य की अपेक्षा अन्तःकरण की निर्मलता के आग्रही सन्त रविदास की उस कठौती में, जिसमें वे उपानह बनाते समय चर्म-प्रक्षालन किया करते थे, गंगा की जलराशि स्वतः भर गयी थी—

‘यह कबीर की साखी, इसमें भक्तों का जीवन—सरबस है, तुलसी के तप का अमृतरस इसमें रामचरितमानस है। इसमें रमा साधकों का मन, सिद्धों का यह क्रीड़ाङ्गन है, ‘दादू’ की मधुमती भूमिका, ‘धुनिया’ की सम्मोहक धुन है। श्रीरविदास सन्त की निश्चल निष्ठा की यह पुण्यकहानी जिसके आँगन की कठवत में उतरा था गंगा का पानी।’

(—‘संवेदना के शिखर’ से)

हिन्दी के रीतिकालीन यशोधर कवि पद्यमाकर जब असाध्य रोग से ग्रस्त हुए, तो गंगा के तट पर डेरा डाल दिया उन्होंने। ‘औषध जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः’—ही उनके सम्बल बन गये। गंगा ने कितने लोगों का उद्धार किया, इसकी गणना करने के लिये उन्हें आकाश के नक्षत्र भी कम लगे—‘जेते तुम तारे, तेते नभ में न तारे हैं।’ सबको मोक्ष प्रदान करने में संलग्न गंगा को निहारकर उन्हें लगा कि अब यमराज के मीरमुंशी चित्रगुप्त जी को न तो अपने बहीखाते में लोगों के पुण्य—पापों का लेखा—जोखा संजोने की जरूरत है और न इसके आधार पर किसी को नरक में भेजने की—

‘गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज यह,

ए रे चित्रगुप्त! मेरे हुकुम पै कान दे।

मूँदि दरवाजेन, नरक सब मूँदि करि

खाता खति जान दै, बही को बहि जान दे।।’

हम सबके दुर्भाग्य से, सबके पाप धोती—पोंछती हुई यह माँ गंगा

आज स्वयं मलिनाम्बरा हो गयी है। आवश्यकता है इसे पुनः श्वेताम्बरा करने की। यदि इसे स्वच्छ करने में अब भी हम प्रमादवश असफल रहे, तो कवियों की वह टोली, जो गंगा के किनारे चाण्डाल या कौवा तक बनकर भी रहने की इच्छुक है— 'श्वपाको काको वा भगवति भवेयं तव तटे'— (बंग— कवि पादुक), हमें क्षमा नहीं करेगी। बंगाल के ही अन्य संस्कृत कवि लक्ष्मीधर की भी वह प्रार्थना भी अपूर्ण रह जायेगी जिसमें उन्होंने धर्म—महोत्सव की विजय—पताका जह्नुनन्दिनी से प्रार्थना की है कि 'जीवन की अवसान—बेला में गंगा का स्पर्श करती हुई अन्तिम सोपान—शिला पर बैठकर लहरों में कूदते—झूलते हुए, 'गंगा—गंगा' पुकारते हुए और आँखों से सर्वात्मना गंगा को ही निहारते हुए शान्ति से प्राण त्याग करें—

‘धर्मस्योत्सववैजयन्ति मुकुटस्रग्वेणि गौरीपते—  
स्त्वां रत्नाकरपत्नि! जह्नुतनये! भागीरथि! प्रार्थये।  
त्वत्तोयान्तशिलानिषण्ण—वपुषस्त्वद्दीचिभिः प्रेङ्खत  
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः प्राणाः प्रयास्यन्ति मे।।’

## शिशुपालवध महाकाव्य में वर्णित 'वेदान्तदर्शन' के तत्त्व

\* प्रदीप नारायण शुक्ल

'वेदान्त' का शाब्दिक अर्थ है— वेद का अन्त। वेदानाम् अन्तः इति वेदान्तः। श्री बलदेव उपाध्याय 'अन्त' शब्द को रहस्य या सिद्धान्त मानकर वेदान्त का अर्थ— वेद का मन्तव्य बताते हैं। वेदान्तसार के कर्ता सदानन्दमुनि ने "वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च" कहकर वेदान्त की परिभाषा की है। अधिकांश विद्वानों ने तो वेदान्त शब्द का अर्थ वेद का अन्तिम भाग अर्थात् उपनिषदों से लिया है। उपनिषदों में सर्वत्र मुख्यरूप से आत्मा, ब्रह्म पर ही विचार किया गया है, यही वेदान्त के नाम से अभिहित हुआ है।

महाकविमाघ अपने ग्रन्थ शिशुपालवध में अद्वैत वेदान्त के तत्त्वों का निरूपण अनेक स्थलों पर करते हैं। संसार को मिथ्या तथा मायावच्छिन्न मानकर ब्रह्म या परमात्मा को ही एकमात्र सत्य मानते हैं। माघ अनेक स्थलों पर केवल ब्रह्मज्ञानप्राप्ति की साधना एवं मोक्षप्राप्ति की आकांक्षा प्रकट करते हैं। इस प्रकार महाकवि माघ द्वारा प्रतिपादित वेदान्त विषयक तत्त्वों का विवेचन हम अधोलिखित प्रकार से कर सकते हैं।

महाकवि माघ श्रीकृष्ण को समस्त दृश्यमान जगत् का आधार मानते हुए उनको पूर्णब्रह्म सिद्ध करते हैं—

युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनो

जगन्ति यस्यां सविकासमासत

तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष—

स्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः।।<sup>2</sup>

अर्थात् सृष्टि के संहारकाल में भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवात्माओं को अपने में समाहित कर लेते हैं जिस प्रकार मकड़ी अपने द्वारा उगले गये

\* शोधार्थी, संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

जाल को अपने में समाहित कर लेती हैं। अर्थात् कविमाघ ने श्रीकृष्ण को जगत् का निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों मानते हैं। 'एकोऽहं बहुस्याम्' के अनुसार सम्पूर्ण जीवात्मा कृष्ण (हिरण्यगर्भ) के व्यष्टिरूप ही तो है। अतः उनके शरीर में सम्पूर्ण जगत् बड़े ही आसानी से समाहित हो जाता है।

महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में वेदान्तदर्शन के अनिर्वचनीय तत्त्व माया के निवृत्ति का संकेत करते हैं—

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना

न यन्नियन्तुं समभावि भानुना ।

प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतै

रदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ।। 1 / 27

भगवान् श्रीकृष्ण नारद से कहते हैं— महर्षे! संसार में हजारों किरणों वाला सूर्य जिस अन्तःकरणस्थ मोहान्धकार अर्थात् अज्ञान रूप अन्धकार को नहीं दूर कर सका, आपने उस सर्वश्रेष्ठ अज्ञानान्धकार को अपने ज्ञान रूप तेज से बलपूर्वक नष्ट कर दिया। महाकवि माघ निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर संकेत करते हैं।<sup>1</sup> इससे माघ के निर्गुणोपासक होने की पुष्टि होती है। आचार्य शङ्कर के अनुसार निर्गुण ब्रह्म उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है। श्रुति का पर्यवसान निर्गुण की व्याख्या में है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म ही पारमार्थिक है—

इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती

न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम! त्वया ।

त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः

किमस्तिकार्यं गुरु योगिनामपि ।। 4

माघ प्रस्तुत पद्य में श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम नाम से सम्बोधित किया है। गीता में भी भगवान् स्वयं कहते हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।<sup>5</sup>

माघ भगवान् श्रीकृष्ण को अग्रभूमि बताते हैं। उनको प्राप्तकर लेने पर पुनः कोई लौटता नहीं है। भगवत् साक्षात्कार ही वस्तुतः मोक्ष है। क्योंकि “सोऽहम्” यह श्रुतिवाक्य है। अतः नारद यह सिद्ध करते हैं कि कृष्ण ही मुमुक्षुओं के द्वारा साक्षात्करणीय है। प्रशस्तटीकाकार मल्लिनाथ लिखते हैं—

“तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।”

महाकवि माघ भगवान् श्रीकृष्ण के निर्गुण स्वरूप का प्रतिपादन करने के अनन्तर प्रकृतोपयोगी सगुण स्वरूप का निरूपण करते हैं।<sup>6</sup> सगुणब्रह्म तो जगत् के समान माया विशिष्ट होने से मायिक सत्ता को धारण करता है।

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं

फणाभृतां छादनमेकमोकसः ।

जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकै

रहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ।।<sup>7</sup>

अर्थात् तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी आप इस भूतलरूप आवरण को ऊपर उठा लिया और सर्पों के पाताललोक के आवरण के रूप में ऊँचे—ऊँचे शेषनाग के फणरूपी खम्भों पर स्थापित कर दिया।

पुराणों के अनुसार भगवान् ने वाराहावतार धारणकर पृथ्वी को जल से ऊपर उठाकर पाताललोक के आवरण के रूप में शेषनाग के सहस्रों फणों पर स्थापित कर दिया। महाकवि माघ प्रस्तुत पद्य में सगुण दृष्टि से कृष्ण का ईश्वरत्व सिद्ध करते हैं।

महाकवि माघ वैष्णव वेदान्त में प्रतिपादित अवतारवाद का भी समर्थन करते हैं। महाकवि माघ भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने और उनके द्वारा पृथ्वी का भार हल्का करने की ओर संकेत करते हैं—

लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुराम

मूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः ।

उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं

गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया ।।<sup>8</sup>

नारद जी कृष्ण से कहते हैं कि हे भगवान्! जब पृथ्वी दानवों के अत्याचार और अधर्म के भार से भंगुर हो रही थी, तब आप दानवों और अधर्म का विनाश कर पृथ्वी को उस भार से मुक्त कराने की इच्छा से पृथ्वी पर अवतरित हुये। परन्तु आपके उदर अथवा कुक्षि में तीनों लोक समाया हुआ है। इतना अधिक भार ग्रहणकर पृथ्वी पर विद्यमान है। अतः आपके भार से पृथ्वी अत्यधिक भारवती एवं गौरवशालिनी हो रही है।

जब पृथ्वी पर अधर्मजनित अत्याचार का भार बढ़ जाता है तब भगवान् स्वयं अवतरित होकर उसका भार कम करते हैं। जैसा कि भगवान् गीता में स्वयं कहते हैं।<sup>9</sup>

महाकवि माघ 'तत्त्वमसि' के द्वारा कृष्ण के अखण्डार्थ ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। अद्वैतवेदान्त में जीवात्मा और ब्रह्म में प्रकाश और अन्धकार की भाँति अभेद सम्बन्ध है।<sup>10</sup> तात्पर्य यह है कि दो नहीं एक, अद्वैत है। 'आत्मानमेव निर्विशेष ब्रह्मसिद्धिः' अर्थात् आत्मा ही ब्रह्म है तथा ब्रह्म ही आत्मा है। भाव यह है कि अज्ञान ही ज्ञान है और ज्ञान ही अज्ञान है।

इस प्रकार महाकवि माघ के ग्रन्थ का सूक्ष्म अध्ययन करने से पता चलता है कि माघ वेदान्त दर्शन के प्रतिष्ठित आचार्य रहे होंगे क्योंकि इन्होंने वेदान्त के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन शिशुपालवध महाकाव्य में किया है। इसके साथ ही साथ कवि माघ न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग और मीमांसा के भी मर्मज्ञ आचार्य थे।

**सन्दर्भ—**

1. वेदान्तसार, पृ0 50
2. शिशुपालवध, 1 / 23
3. वही, 1 / 31-33
4. वही, 1 / 31
5. श्रीमद्भगवद्गीता-15 / 18
6. शिशुपालवध, 1 / 34-39 तक
7. वही, 1 / 34

8. वही, 1 / 36
9. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।  
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ गीता 4 / 7 ॥
10. शिशुपालवध, 2 / 62

## महाभारत में रेखागणित (Geometry)

\* डॉ० पूर्णिमा सिंह राणा

संस्कृत वाङ्मय में ज्ञान—विज्ञान की अपार—निधि छिपी हुई है। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में तत्त्वज्ञान, अध्यात्म ज्ञान, देवोपासनादि कर्मकाण्ड के अतिरिक्त विज्ञान विषयक तत्त्वों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में यज्ञ परम्परा प्रचलित थी। अतः यज्ञ वेदी, मण्डप आदि के निर्माण में रेखागणित का प्रयोग किया जाता था। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में वेदाङ्गों का विशेष महत्त्व है। इन षड् वेदाङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द) में 'कल्प' वेदाङ्ग विशेष रूप से यज्ञ कर्म की जानकारी का स्रोत माना जाता रहा है। कल्प सूत्रों के अन्तर्गत श्रौतसूत्र नामक जो पुस्तकें रची गयीं उनके परिशिष्टों में क्षेत्रमिति (ज्यामिति) के नियम देखने को मिलते हैं। इन परिशिष्टों को "शुल्बसूत्र" कहते हैं। शुल्ब शब्द का अर्थ है— डोरी या रस्सी। शुल्ब धातु का अर्थ है— मापना या नापना। डोरी की सहायता से वेदी, अग्निचिति, मण्डप आदि को मापने की सूत्र रूप जानकारी जिन पुस्तकों में दी गई है, वे शुल्बसूत्र कहलाते हैं। धार्मिक कर्मकाण्डों तथा यज्ञादि की परम्परा रामायण काल तथा महाभारतकाल में भी अत्यधिक प्रचलित थी।

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में अनेक स्थानों पर ज्यामितीय गणित (रेखागणित) से सम्बन्धित तथ्यों का उल्लेख कथानक को स्पष्ट करने हेतु प्रकारान्तर से किया है, जैसे— रेखा (line), कोण (Angle) तथा ज्यामितीय रचनाओं जैसे— वृत्त (Circle), वर्ग (Square), आयत (Rectangle) आदि।

### 1. रेखा (Line) —

गणितीय भाषा में रेखा से तात्पर्य है कि — "रेखा सीधी होती है जिसका दोनों दिशाओं में विस्तार अपरिमित होता है इसमें अन्त्य बिन्दु नहीं होता है।" अतः विद्वानों के अनुसार रेखा की कल्पना अपरिमित स्थान (आकाश) में की जा सकती है।

महर्षि वेदव्यास अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने महाभारत के

\* सहायक अध्यापिका, बेसिक शिक्षा विभाग, बहराइच 3090।



सभा पर्व में भीष्म तथा युधिष्ठिर के मध्य द्वारकापुरी की चर्चा के प्रसङ्ग में रेखा का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में भीष्म का कथन है कि विश्वकर्मा के द्वारा बनाये गये वे (विशाल) भवन महेन्द्र पर्वत के शिखरों के समान शोभा धारण करते हैं, जिन्हें देखकर प्रतीत होता है मानो वे आकाश में रेखा खींच रहे हों।<sup>1</sup> इस वर्णन में महाभारतकार ने रेखा को प्रदर्शित करने के लिए आकाश को आधार बनाया क्योंकि आकाश का विस्तार असीमित है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महर्षि व्यास को रेखा के गुण का ज्ञान भली-भांति था अर्थात् वे जानते थे कि रेखा को नापा नहीं जा सकता क्योंकि इसका कोई अन्त्य बिन्दु नहीं होता है।

### (2.) कोण (Angle) –

आधुनिक गणित के नियमानुसार एक बिन्दु से निकलने वाली दो किरणों के मध्य भाग को कोण (Angle) कहते हैं। यथा – न्यूनकोण, अधिककोण, बृहत्कोण, ऋजुकोण, समकोण, सम्पूर्ण कोण। इस प्रकार आधुनिक गणितज्ञों ने कोणों के छः भेद बताए हैं जिनका प्रयोग ज्यामितीय रचनाओं में अनिवार्य रूप से किया जाता है।

प्राचीन काल में विद्वानों, मनीषियों तथा ऋषियों आदि को कोणों का गूढ़ ज्ञान था, इसका सशक्त प्रमाण वेदियों के निर्माण में कोणों की महत्ता को दर्शाने में प्राप्त होता है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में अनेक स्थानों पर कोणों का उल्लेख कथावस्तु को स्पष्ट करने हेतु किया है। इस सन्दर्भ में महाभारत के सभापर्व में ब्रह्मदेव द्वारा वृत्रासुर के वध के प्रसङ्ग में यह कथन मिलता है कि इन्द्र का वज्र षट्कोण की आकृति वाला था।<sup>2</sup> यहाँ षट्कोण से तात्पर्य – छः कोणों से युक्त अर्थात् छः भुजाओं वाला है। इसी प्रकार महाभारत के शान्ति पर्व में इन्द्र द्वारा अम्बरीष के प्रति रणयज्ञ का उल्लेख किया गया है जिसमें आठ कोण वाले यूप की चर्चा की गई है।<sup>3</sup> इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत काल में सभी विद्वानों को कोणों का वृहत् ज्ञान था।

### (3.) वृत्त (Circle) –

रेखागणित में नाना प्रकार की ज्यामितीय रचनाओं का उल्लेख

मिलता है, जिनमें से एक आकृति वृत्त (Circle) तथा गोला (Sphere) है। दैनिक जीवन में हम सभी अनेक ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं जो गोल आकृति जैसी होती है, यथा – गेंद, नींबू, सन्तरा आदि। गणितज्ञों के अनुसार गोले और वृत्त में मात्र एक ही अन्तर होता है कि वृत्त को केवल आभास किया जा सकता है जबकि गोले को हाथ में भी लिया जा सकता है। गोला भी वृत्ताकार ही होता है।

प्राचीन काल में ऋषियों तथा विद्वानों को गोले तथा वृत्त का गूढ़ ज्ञान था। गणित शास्त्र में पाई ( $\pi$ ) का मान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट (476 ई.) पहले गणितज्ञ माने जाते हैं जिन्होंने पाई ( $\pi$ ) का लगभग परिमित मान 3.1416 निकाला था।<sup>4</sup> महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य ने 'लीलावती' नामक अपनी पुस्तक में पाई ( $\pi$ ) के दो मान (स्थूल मान =  $22/7$ ) तथा सूक्ष्म मान 3.1416) दिए।<sup>5</sup> इसी प्रकार अनेक गणितज्ञों ने पाई ( $\pi$ ) का मान अपने-अपने दृष्टिकोण से बताया है।

महर्षि व्यास ने महाभारत के भीष्म पर्व में संजय द्वारा द्वीपों तथा ग्रहों की विस्तृत चर्चा का उल्लेख किया है जिसमें राहु ग्रह के विषय में संजय का कथन है कि राहुग्रह मण्डलाकार है। इसका व्यास बारह हजार योजन, परिधि छत्तीस हजार योजन तथा मोटाई छः हजार योजन है। इसी प्रकार चन्द्रमा का व्यास ग्यारह हजार योजन, परिधि तैंतीस हजार योजन और मोटाई उनसठ सौ योजन है तथा सूर्य का व्यास दस हजार योजन, परिधि तीस हजार योजन तथा मोटाई अठावन सौ योजन है।<sup>6</sup> इस विवरण में संजय द्वारा राहु, चन्द्रमा और सूर्य की परिधि, व्यास और मोटाई का उल्लेख किया गया है। यदि इस विवरण को गणितीय भाषा में व्यक्त किया जाए तो पाई ( $\pi$ ) का मान प्राप्त हो जाता है, सूत्रानुसार –

$$\pi = \frac{\text{परिधि (Circumference)}}{\text{व्यास (Diameter)}}$$

1. राहु ग्रह की परिधि = 36000 योजन  
राहु ग्रह का व्यास = 12000 योजन

$$\pi = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{36000}{12000} = 3$$

$$\therefore \pi =$$

2. चन्द्रमा की परिधि = 33,000 योजन  
चन्द्रमा का व्यास = 11,000 योजन

$$\pi = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{36000}{12000} = 3$$

$$\therefore \pi =$$

3. सूर्य की परिधि = 30000 योजन  
सूर्य का व्यास = 10000 योजन

$$\pi = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{36000}{12000} = 3$$

$$\therefore \pi =$$

इस विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि महाभारतकार द्वारा वर्णित राहु, चन्द्र और सूर्य की मापों को पाई ( $\pi$ ) के सूत्र में रखा जाए तो हमें पाई का सटीक मान ( $\pi = 3$ ) प्राप्त हो जाता है। यद्यपि महर्षि व्यास ने पाई ( $\pi$ ) शब्द का अक्षरशः नामोल्लेख नहीं किया है किन्तु सांकेतिक रूप से इसका बोध इस विवरण में यहां हो रहा है।

महर्षि व्यास के इस मान ( $\pi = 3$ ) का समर्थन करते हुए पुरानी बाइबिल, बौधायन शुल्बसूत्र (400 ई.पू.) तथा जैन ग्रन्थ (300 ई.पू.) में भी  $\pi = 3$  मिलता है।<sup>7</sup>

इस समस्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आर्यभट्ट तथा भास्कराचार्य आदि महान् गणितज्ञों से हजारों वर्ष पूर्व महर्षि व्यास ने महाभारत में पाई ( $\pi$ ) के सटीक मान ( $\pi = 3$ ) का सांकेतिक रूप से उल्लेख किया है। अतः यह उल्लेख तत्कालीन गणितशास्त्र की पराकाष्ठा का सशक्त प्रमाण प्रतीत होता है।

#### (4.) वर्ग (Square) –

आधुनिक गणित के नियमानुसार वर्ग, चतुर्भुज का एक प्रकार है,

इसकी चारों भुजाएं समान होती हैं तथा प्रत्येक कोण समकोण ( $90^\circ$ ) होता है। वर्ग का क्षेत्रफल उसकी लम्बाई तथा चौड़ाई के गुणनफल के बराबर होता है।

महर्षि व्यास ने कथानक के प्रवाह में अनेक स्थानों पर वर्गाकृति का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में महाभारत के सभा पर्व में वैशम्पायन द्वारा जनमेजय के प्रति कथन है कि मयासुर ने सभा के निर्माण हेतु भूमि की नाप करवायी जिसके अनुसार वह भूमि सभी ओर से दस हजार हाथ की थी।<sup>8</sup> इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि मयासुर द्वारा निर्मित वह सभा वर्गाकार थी, जिसकी प्रत्येक भुजा की लम्बाई दस हजार हाथ थी। इसे गणितीय भाषा में स्पष्ट किया जा सकता है, यथा —

10000 हाथ

भूमि की लम्बाई = 10000 हाथ

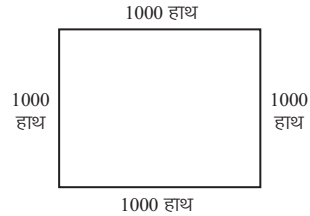
भूमि की चौड़ाई = 10000 हाथ

आधुनिक गणित के अनुसार

भूमि का क्षेत्रफल = भूमि की लम्बाई X भूमि की चौड़ाई

$$= 10000 \times 10000$$

$$= 100000000 \text{ (वर्ग हाथ)}$$



अतः इस कथन से यह प्रतीत होता है कि महाभारत काल में भूमि की नाप करने के लिए ज्यामिति (रेखा गणित) का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता था। इससे तत्कालीन गणितशास्त्र तथा वास्तुशास्त्र की उत्कृष्ट दशा का अनुमान लगाया जा सकता है।

### 5. आयत (Rectangle) —

आधुनिक रेखागणित के नियमानुसार, आयत चतुर्भुज का एक प्रकार है, इसके आमने-सामने की भुजा बराबर होती है तथा प्रत्येक कोण समकोण ( $90^\circ$ ) होता है और इसके दोनों विकर्ण बराबर होते हैं।

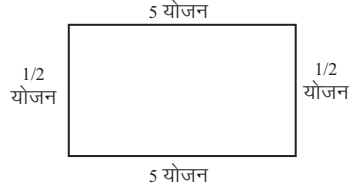
महर्षि व्यास ने महाभारत के वन पर्व में आयताकार वेदी का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में पुलस्त्य मुनि द्वारा कामतीर्थ की चर्चा करते हुए

कथन है कि उस तीर्थ में पांच योजन लम्बी तथा आधा योजन चौड़ी पवित्र वेदी थी, जिसका सेवन देवता तथा ऋषि भी करते थे।<sup>9</sup> इस कथन के अनुसार वह वेदी आयताकार थी जिसकी लम्बाई पांच योजन तथा चौड़ाई आधा योजन थी। इसे आधुनिक गणित के अनुसार स्पष्ट किया जा सकता है, यथा –

वेदी की लम्बाई = 5 योजन

वेदी की चौड़ाई =  $1/2$  योजन

वेदी का क्षेत्रफल



$$= \text{वेदी की लम्बाई} \times \text{वेदी की चौड़ाई}$$

$$= 5 \times 1/2$$

$$= 5/2$$

$$= 2.5 \text{ वर्ग योजन}$$

इस समस्त विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाभारत काल में गणित शास्त्र अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था तथा उस काल में गणित का प्रयोग लोक व्यवहार में सामान्य रूप से किया जाता था। इससे महर्षि व्यास की वैज्ञानिक प्रतिभा का बोध होता है साथ ही महाभारतकार की यह उक्ति भी सार्थक प्रतीत होती है, यथा— ‘यदि हास्ति तदन्यत्र यन्ने हास्ति नतत्क्वचित’।

संदर्भ –

1. महेन्द्र शिखर प्रख्यैर्विहितैविश्वकर्मणा।

आलिखिगिरिवाकाशमितचन्दार्कभास्वरैः।।

— महा. भा. सभा पर्व. 38 पृ. 314

2. महच्छत्रुहणं घोरं षडश्रं भीमनिः स्वनम्।

तेन वज्रेण वै वृत्रं बधिष्यति शतक्रतुः।

— महा. भा. वन पर्व 100.11

3. उत्तिष्ठते कबन्धोऽव सहस्रे निहते तुयः।

स यूपस्तस्य शूरस्य खादिरोऽष्टास्त्रारूच्यते ॥

— महा. भा. शान्ति पर्व 98.25

4. चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।  
अयुतद्वय विष्कम्भस्य आसन्नो वृत्त परिणाहः ॥

— प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

5. व्यासे भनन्दाग्नि (3927) हते विभक्ते, ख बाण सूर्यैः (1250)  
परिधिस्तु सूक्ष्मः ।  
द्वाविंशति (22) धन वि०तेऽथ शैलेः (6), स्थूलोऽथवा स्याद्  
व्यवहारयोग्य ॥

— लीला. (क्षेत्रव्यवहारः) श्लो. 40

6. उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहं वै श्रुणु तत्त्वतः ।  
स्वर्भावोः कौरवश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः ।  
परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः ॥  
योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशास्य वै ।  
परिणाहेन षट्त्रिंशद् विपुलत्वेन चानघ ॥  
षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा ।  
चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ॥  
विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत् तु मण्डलम् ।  
एकोनषष्टि विष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः ॥  
सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चान्ये कुरुनन्दन ।  
विष्कम्भेण ततो राजन् मण्डलं त्रिंशता समम् ॥  
अष्टपञ्चाशतं राजन् विपुलत्वेन चानघ ।  
श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः ॥

— महा. भा. भीष्म पर्व. 12.39–45

7. भारतीय गणित ज्योतिष का इतिहास पृ. 124  
8. अभिप्रायेण पार्थानां कृष्णस्य च महात्मनः ।

पुण्येऽहनि महतेजाः कृतकौतुकमलः ॥

दशकिष्कुसहस्रां तां मापयामास सर्वतः ॥

— महा. भा. सभा पर्व 19–21

9. अर्धयोजनविस्तारा पञ्चयोजनमायता ।

एतावती वेदिका तु पुण्या देवर्षिसेविता ॥

— महा. भा. वन पर्व. 8.107

## संस्कृत वाङ्मय में शासन एवं प्रशासन की अवधारणा : एक विवेचन

\* डॉ० सन्त प्रकाश तिवारी

संस्कृत वाङ्मय में विविध शास्त्र के शास्त्रज्ञों के अनुसार राज्य के सात अंग बतलाये गये हैं— (१) स्वामी (शासक), (२) अमात्य, (३) जनपद या राष्ट्र, (४) दुर्ग (सुरक्षित नगर अथवा राजधानी), (५) कोश (शासक के कोश मे द्रव्य राशि), (६) दण्ड (सेना) (७) मित्र ।<sup>१</sup> कौटिल्य ने तो राजा को ही संक्षेप में राज्य की संज्ञा दे डाली है ।<sup>२</sup> कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से निरूपित किया है कि मन्त्रिमण्डल, अधीक्षक तथा कर्मचारियों की नियुक्ति राजा ही करता है । वही संकटकालीन स्थिति में संकट से बचने का उपाय करता है । यदि राजा शक्ति सम्पन्न और बुद्धिमान् है तो वह अपनी प्रकृतियों को समृद्धि प्रदान करता है । शुक्रनीति के अनुसार यदि राजा मनमाना कार्य करता है तो इससे राज्य पर विपत्तियाँ आती हैं मन्त्रियों की हानि होती है अन्त में राज्य का नाश होता है ।

शुक्रनीति में राज्य के सप्तांगों की तुलना शरीर के अंगों से की गयी है । जैसे— राजा सिर है, मन्त्री आँखें, मित्र कान, कोश मुख, सैन्यशक्ति मन, राज्य एवं राष्ट्र हाथ एवं पैर हैं । कामन्दक ने नीतिसार में उल्लेख किया है कि सातों अंग एक दूसरे के पूरक हैं, यदि एक भी अंग दोषपूर्ण हुआ तो राज्य के लिए हानिकारक हो सकता है ।<sup>३</sup> मनु एवं महाभारत ने राज्य के अंगों में स्वाभाविक एकता देखी है । सभी अंगों को लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के साथ मिलकर कार्यशील होना ही होगा । सभी अंग महत्त्वपूर्ण हैं, कोई दूसरे से हीन नहीं है, एक की महत्ता अपने स्थान पर है वह दूसरे से बढ़कर नहीं है ।<sup>४</sup> संस्कृत वाङ्मय में समुपलब्ध शासन एवं प्रशासन की दृष्टि से शासन के सप्तांगों का विवेचन निम्न प्रकार है—

### 1. स्वामी (शासक)

संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में स्वामी अथवा शासक पर बल

\* अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ



दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख किया गया है कि देवों ने राजा के न रहने पर अपनी दुर्दशा देखी और फिर एकमत होकर उसका चुनाव किया।<sup>5</sup> इससे स्पष्ट होता है कि समसामयिक आवश्यकताओं ने स्वामित्व अथवा शासन प्रणाली को जन्म दिया। मनुस्मृति तथा शुक्रनीतिसार में कहा गया है कि "जब सभी व्याकुल हो इधर-उधर दौड़ने लगे और विश्व में कोई स्वामी नहीं था तब विधाता ने इस विश्व की रक्षा के लिए स्वामी का प्रणयन किया।"<sup>6</sup> आचार्य कौटिल्य का कथन है कि "स्वामी के अभाव में मात्स्य न्याय (बड़ी मछलियों का छोटी को निगल जाना) की दशा उत्पन्न हो जाती है क्योंकि शासक के अभाव में बलवान दुर्बल को कष्ट पहुंचाने लगता है। कौटिल्य ने यह भी कहा है कि मात्स्य न्याय से अभिभूत होकर लोगों ने मनु वैवस्वत को अपना राजा बनाया।<sup>7</sup> बाल्मीकि रामायण में महर्षि बाल्मीकि कहते हैं—

**मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्।<sup>8</sup>**

महाभारत में निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है—

**दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः।**

**जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्बलं बलवत्तराः।।<sup>9</sup>**

आचार्य कामन्दक ने निम्न प्रकार से उल्लेख किया है—

**दण्डाभावे परिध्वंसी मात्स्यो न्यायः प्रवर्तते।<sup>10</sup>**

राजकीय व्यापार की महत्ता को द्योतित करने के लिए भी संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थों में उल्लेख है कि राजा में देवों के अंश होते हैं। आचार्य मनु ने स्पष्ट किया कि "विधाता ने इन्द्र, मरुत, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र, एवं कुबेर के प्रमुख अंशों से युक्त राजा की रचना की, अतः वह (शासक) राज महिमा के कारण सभी जीवों में आगे बढ़ जाता है"<sup>11</sup>

**राजा के गुण—**

संस्कृत वाङ्मय के अनुसार राजा को शक्तिमान् दयालु दूसरों के अतीत कर्मों का जानकार, तप, ज्ञान एवं अनुभव वालों पर आश्रित, अनुशासित मन वाला, अच्छे बुरे भाग्य में समान भाव से रहने वाला, अच्छे मातृकुल एवं पितृकुल वाला, सत्यवादी, मन एवं देह से पवित्र, कार्यपटु,

शक्तिशाली, स्मृतिमान् वचन एवं कर्म में मृदु, वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालक, दुष्कर्मा से दूर रहने वाला, मेधावी, साहसी रहस्य गोपनीय रखने में चतुर, राज्य के दुर्बल स्थलों की रक्षा करने वाला, शासनशास्त्र एवं अर्थशास्त्र एवं तीनों वेदों में प्रशिक्षित होना चाहिए। उसे ब्राह्मणों के प्रति सहनशील मित्रों के प्रति सरल शत्रुओं के प्रति क्रूर एवं सेवकों तथा प्रजा के प्रति पितृवत् रहना चाहिए।<sup>12</sup>

## 2. अमात्य (मंत्रिमण्डल)

राज्य के सात अंगों में दूसरा अमात्य है जिसे हम सचिव या मंत्री भी कहते हैं। आरम्भिक रूप में इसका प्रयोग ऋग्वेद में प्राप्त होता है। "हे अग्नि मन्त्रियों के साथ ही हाथी पर चढ़े हुए राजा के समान जाओ।"<sup>13</sup> राजा को अपने गुरुओं एवं मन्त्रियों से ज्यादा सुखपूर्वक जीवन नहीं जीना चाहिए। कौटिल्य का कहना है कि राजत्व—पद सहायकों की मदद से सम्भव है केवल एक पहिया कार्यशील नहीं होता, अतः राजा को चाहिए कि वह मन्त्रियों की नियुक्ति करे और उनकी सम्मतियाँ सुने।<sup>14</sup> मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या के विषय में बहुत प्राचीन काल से ही मतभेद रहा है। कौटिल्य एवं कामन्दक का कहना है कि मानव सम्प्रदाय के अनुसार मन्त्रिपरिषद् में १२ अमात्य होते हैं, बार्हस्पत्यों के अनुसार १३ औशनसों के अनुसार २०। मनुस्मृति के अनुसार राजा की वंशपरम्परागत, शास्त्रों में प्रवीण, वीर, उच्च कुलोत्पन्न एवं भलीभाँति परीक्षित ७ या ८ व्यक्तियों को चुन लेना चाहिए।<sup>15</sup> आठ प्रधान मन्त्रियों में— मुख्य प्रधान (प्रधानमंत्री), पन्त अमात्य (वित्तमंत्री), पन्त सचिव (आय—व्यय निरीक्षक), सेनापति (राजा के व्यक्तिगत कार्यों का प्रभारी), सुमन्त (विदेशमंत्री), पण्डितराव (धार्मिक बातों का प्रभारी) एवं न्यायाधीश। मन्त्रिपरिषद् से एकान्त में परामर्श लेना उचित माना जाता है। मन्त्रियों से परामर्श लेने के पश्चात् ही शासन सम्बन्धी कार्य का आरम्भ करना चाहिए।

## 3. राष्ट्र

ऋग्वेद में राष्ट्र शब्द का प्रयोग आया है— मेरा राष्ट्र दोनों ओर है।<sup>16</sup> वरुण को राष्ट्रों का स्वामी भी कहा गया है<sup>17</sup> तैत्तिरीय संहिता में आशीर्वचन

आया है— "इस राष्ट्र में राजा शूर, महारथी और धनुर्धर हो।"<sup>18</sup> कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार राज्य के सभी अंगों का उद्भव राष्ट्र से होता है अतः राजा को सभी सम्भव प्रयत्नों द्वारा राष्ट्र की वृद्धि करनी चाहिए।<sup>19</sup> अग्नि पुराण के अनुसार राज्य के सभी अंगों में राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ है। कामन्दक ने उल्लेख किया है कि "राजा के राष्ट्र की समृद्धि इसकी मिट्टी के गुणों पर निर्भर रहती है, राष्ट्र—समृद्धि से राजा की समृद्धि होती है, अतः राजा को चाहिए कि वह समृद्धि के लिए अच्छे गुणों से युक्त ऐसी भूमि का चुनाव करे, जिससे प्रचुर अन्न उपजता हो जहाँ खनिज हो जहाँ व्यापार हो सके, खानों तथा अन्य वस्तुओं की भरमार हो, जहाँ पशु—पालन हो सके, प्रचुर जल हो, जहाँ संसाधनों की व्यवस्था हो सके केवल वर्षा के जल पर निर्भर न रहना पड़े"<sup>20</sup> राष्ट्र का निर्माण वहाँ करना चाहिए जहाँ जीविका के साधन सरलता से उत्पन्न हो सकें, जहाँ की मिट्टी अच्छे गुणों से वाली हो, जहाँ पर्याप्त मात्रा में जल हों, जहाँ पर्वत मालाएँ हों, जहाँ व्यापारी अधिक संख्या में हों, जहाँ कृषक विशेष रुचि रखते हों जो राजा के प्रति सत्य या अनुकूल तथा शत्रु के प्रति प्रतिकूल हों तथा विपत्तियों एवं कर के भार को वहन कर सकें। जो अति विस्तृत हो जहाँ देश विदेश के व्यक्ति निवास करते हों।

#### 4. दुर्ग (राजधानी)

समृद्ध राष्ट्र के निर्माण के चौथा महत्त्वपूर्ण अंग है दुर्ग अथवा राजधानी। राजधानी देश की सम्पत्ति का दर्पण थी और यदि वह ऊँची—ऊँची दीवारों से सुदृढ़ रहती थी तो सुरक्षा का कार्य भी करती थी। याज्ञवल्क्य का कथन है कि दुर्ग की स्थिति से राजा की सुरक्षा, प्रजा एवं कोश की रक्षा होती है। महाराज मनु ने दुर्ग के निर्माण का कारण भली—भाँति बताया है, दुर्ग में अवस्थित एक धनुर्धर सौ धनुर्धरों को तथा सौ धनुर्धर एक सहस्र धनुर्धरों को मार गिरा सकते हैं। कौटिल्य ने दुर्गों के निर्माण तथा उनमें से किसी एक को राजधानी बनाने के विषय में सविस्तार से उल्लेख किया है। यथा— औदक— जिसके चारों ओर जल हो, पर्वत—पहाड़ी या गुफा वाला, धान्वन— मरुभूमि वाला जहाँ झाड़—झंखाड़ हो तथा वनदुर्ग जहाँ बेंत और बाँस के झुण्ड हों।<sup>21</sup> रामायण तथा महाभारत में प्रकारों,

तोरणों, अट्टालिकाओं, उपकुल्याओं आदि का उल्लेख राजधानियों के सन्दर्भ में पाया जाता है।

## 5. कोश

कोश विहीन राजा प्रजा के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। कौटिल्य का कथन है कि राज्य के सारे व्यापार कोश पर आधारित हैं। अतः राजा को सर्वप्रथम कोश पर ध्यान देना चाहिए।<sup>22</sup> प्राचीन भारत के भारतीय राज्यों के दो स्तम्भ थे, राजस्वबल, सैन्यबल। मनु का कथन है कि राज्य का कोश एवं शासन राजा पर निर्भर रहता है, अर्थात् राजा को उन पर व्यक्तिगत ध्यान देना चाहिए। कोश को भरने के लिए कामन्दक ने अनेक विधान बताये हैं— कृषि, जल स्थल के मार्ग, राजधानी, जलों के बाँध, हाथियों को पकड़ना, खानों में काम करना—सोना एकत्र करना, धनिकों से धन उगाहना, निर्जन स्थानों में नगरों एवं ग्रामों को बसाना। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी स्रोत कोश के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु थे।

## 6. बल (सैन्यशक्ति)

ऋग्वेद में सेना अस्त्र—शस्त्रों, युद्धों आदि का वर्णन कई बार हुआ है। सेनानी शब्द ऋग्वेद में आया है यहाँ युद्ध कोश को सेनानी होने के लिए पुकारा गया है।<sup>23</sup> ऋग्वेद में धनुषों बाणों, कवच, प्रत्यंचाओं, सारथियों, अस्त्रों रथों आदि की चर्चा हुई है। कामन्दक नीतिसार में उल्लेख किया गया है कि परिपूर्ण कोश के रहने पर राजा अपनी क्षीण सेना बढ़ाता है, अपने प्रजा की रक्षा करता है और उस पर उसके शत्रुगण भी आश्रित रहते हैं। बलशाली सेना से मित्रों की सम्पत्ति तथा स्वयं राजा के राज्य की सीमाएँ बढ़ती हैं। अधिकांश आचार्यों के मत में सेनाएँ छः प्रकार की होती हैं। यथा मौल (वंशपरम्परानुगत), भृत या भृतक या भृत्य (वेतन पर रखे गये सैनिकों का दल), श्रेणी (वणिकों या अन्य जन समुदायों की सेना), मित्र (मित्रों या सामन्तों की सेना), अमित्र (ऐसी सेना जो कभी शत्रुपक्ष की थी), अटवी (जंगली जातियों की सेना)। सेना के चार भाग होते थे, हस्ती, अश्व, रथ, एवं पैदल और इस प्रकार की सेना की संज्ञा चतुरंगिणी थी। महाभारत के

शांतिपर्व में सेना के छः अंगों का उल्लेख किया गया है हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, कोश एवं आवागमन के मार्ग। कौटिल्य और कामन्दक के मत से शत्रुनाश हाथियों पर निर्भर रहता है।<sup>24</sup>

## 7. सुहृद या मित्र

मनु ने मित्र बनाने की आवश्यकता पर बहुत बल दिया है।<sup>25</sup> राजा के लिये अच्छे मित्र के गुणों का वर्णन किया है— राजा सोना एवं भूमि पाकर उतना समृद्धिशाली नहीं होता, जितना की अटल मित्र पाकर, भले ही वह (मित्र) कम धन (कोश) वाला हो, क्योंकि भविष्य में वह शक्तिशाली हो जायेगा। एक दुर्बल मित्र भी श्लाघनीय है यदि वह गुणवान् एवं कृतज्ञ हो, मनु के मत से भूमि सोना एवं मित्र राजा की नीति या प्रयत्नों के तीन फल हैं। याज्ञवल्क्य ने भी मनु की बात का समर्थन किया है। महाभारत में उल्लेख है कि कोई भी किसी का न मित्र है न शत्रु। मित्र एवं शत्रु धन के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।<sup>26</sup>

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय में शासन एवं प्रशासन के लिए सुदृढ़ एवं सुन्दर विवेचन मिलते प्राप्त होता है।

### सन्दर्भ —

1. स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा। सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्तांगं राज्यमुच्यते। मनु० 9/294, स्वाम्यमात्यजनदुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। अर्थशास्त्र 6/1, स्वाम्यमात्यौ जनो दुर्ग कोशो दण्डस्तथैव च। मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्तांगमुच्यते।। याज्ञवल्क्य 1/353।
2. तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति। अर्थशास्त्र 8/1, राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः। वही 8/2, सप्तांगस्येह राज्यस्य विशिष्टश्चस्य त्रिदण्डवत्। अन्योन्यगुणवैशेष्यान् किञ्चिदतिरिच्यते।। तेषु—तेषु तु कृत्येषु तत्तदगं विशिष्यते। येन यत्याध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते।। मनुस्मृति 9/296—297, सप्तांग मुच्यते राज्यं तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः। दृगमात्यः सुहृच्छेत्रं मुख कोषो बलं मनः।। हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रौ— शुक्रनीति 1/61—62।
3. कामन्दकीय नीतिसार 4/1—2।

## ●●● वीथिका ●●●

4. सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यासां यथाक्रमम् । पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्वयसनं महत् ॥ मनुस्मृति 9 / 295 ।
5. ऐतरेय ब्राह्मण 1 / 14 ।
6. अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् । रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥ मनुस्मृति 7 / 3, शुक्रनीतिसार 1 / 71 ।
7. अप्रणीता हि मात्यन्यायमुद्भावयति । बलीयान बलं हि ग्रसते दण्डधराभावे । अर्थशास्त्र 1 / 4 मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनु वैवस्वतं राजानं चक्रिरे । वही 1 / 13 ।
8. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण 2 / 67 / 31 ।
9. महाभारत शान्तिपर्व 15 / 30 ।
10. कामन्दकीय नीतिसार 2 / 40 ।
11. इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेयश्च वरुणस्य च । चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती ॥ मनु० 7 / 4 ।
12. स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु । सुहृत्स्वजिह्वः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥  
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्विवानिशम् । जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ मनु० 7 / 32-44, अर्थशास्त्र 6 / 1, याज्ञवल्क्यस्मृति 1 / 309-311, शुक्रनीति 1 / 73-86 ।
13. णुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवां इभेन । ऋग्वेद 4 / 4 / 1, याहि राजा इभेव अमात्यवान् अभ्यमनवान् स्ववान् वा । निरुक्त 6 / 12 ।
14. अर्थशास्त्र 1 / 7 ।
15. मौलांछस्त्रविदः शूराँल्लक्षलक्षान्कुलोद्भवान् । सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ मनुस्मृति 7 / 54 ।
16. "मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य" ऋग्वेद 4 / 42 / 1 ।
17. राजा राष्ट्राणाम् वही 7 / 34 / 11 ।
18. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायमास्मिन् राष्ट्रे राजन्य इषव्यः शूरा

महारथो जायतां दोग्धी धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तः पुरन्धिर्योशाजिष्णू  
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे नः पर्जन्यो  
वर्षतु फलिन्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् । तैत्तिरीय  
संहिता 7 / 5 / 18 / 1 ।

19. कामन्दकीय नीतिसार 6 / 3 ।
20. कामन्दकीय नीतिसार 4 / 50 / 56 ।
21. अर्थशास्त्र 2 / 3-4 ।
22. कोशमूलाः कोशपूर्वाः सर्वाः रम्भाः । तस्मात्पूर्वं कोशमवेक्षेत । अर्थशास्त्र  
2 / 2 ।
23. अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि । ऋग्वेद  
10 / 84 / 2 ।
24. हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञाम् । अर्थशास्त्र 2 / 2 ।
25. हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते । यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा  
कृशमप्यायतिक्षमम् । । मनुस्मृति 7 / 208 ।
26. न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचित्सुहृत् । अर्थतस्तु निबन्ध्यन्ते  
मित्राणि रिपवस्तथा । । महाभारत शान्ति पर्व 138 / 110 ।

## श्रीमद्भगवद् गीता में कर्मवाद की अवधारणा

\* पूजा सिंह

सुव्यवस्थित मानव जीवन के लिए कर्म सबसे पहली सीढ़ी है, जो इस सीढ़ी पर पैर नहीं रखता वह एक ही स्थान पर स्थिर और दुःख का भोगकारी हो जाता है। कर्म की उपयोगिता एक व्यक्ति से लेकर समूचे राष्ट्र तक को होती है। मानव विकास हो या राष्ट्र का विकास हो, कर्म ही एक मात्र विकास का आधार है। प्राचीन काल से ही वैदिक, साहित्यिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों के माध्यम से कर्मयोग की प्रेरणा प्रदान की जा रही है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कर्मयोग की उपयोगिता अद्वितीय है। कर्मयोग व्यक्ति के साथ-साथ समाज को भी उच्च शिखर तक पहुँचा देता है। व्यक्ति यदि कर्मयोगी है अर्थात् कर्मपरायण व्यक्ति कर्मयोग के आचरण को यदि अपने व्यवहार में उतार ले तो वह आचारवान होने के साथ-साथ वहाँ का परिवेश अर्थात् समाज भी अच्छे आचारों-विचारों वाला हो जाता है। आधुनिक युग में कर्मयोग का श्रेष्ठ ग्रन्थ भगवान श्रीकृष्ण की वाणी से अलङ्कृत श्रीमद्भगवद्गीता है। इसमें कर्मयोग का महत्त्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। गीता में जो कर्मयोगी के गुण<sup>1</sup> बताए गये हैं, यदि उनको धारण कर लिया जाय तो अकर्मण्यता, हिंसा, चोरी, प्रमाद आदि सभी अवगुण नष्ट होकर एक स्वच्छ, पवित्र और सबल समाज का निर्माण हो सकता है।

कर्म मानव विकास का आधार तत्त्व है, कर्म के माध्यम से विभिन्न ज्ञानी जन परम सिद्धि को प्राप्त हुए। इसी परिप्रेक्ष्य में जनकादि परम ज्ञानी जानों का एक वृत्तान्त गीता में भी प्राप्त होता है—

**“कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः**

**लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।<sup>2</sup>**

और श्रेष्ठ पुरुष जिन-जिन आचरणों को व्यवहार में प्रयोग करता है, अन्य पुरुष भी वैसा ही आचरण करते हैं। इन पुरुषों द्वारा किया गया आचरण भविष्य के लिए प्रमाण बन जाता है।<sup>3</sup> इस कारण हमें हमेशा यह

\* शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।



ध्यान रखना चाहिए हमारे द्वारा किया गया कर्म आगे आने वाली पीढ़ी के लिए अच्छा या बुरा दोनों हो सकते हैं अतः हमें केवल सद् कर्म करना चाहिए असद् कर्म नहीं।

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है यदि अपने कर्मों में सावधानी न बरती जाय तो वह अनिष्ट के कारण बन जाते हैं इसी कारण योगीराज ने कहा यदि मैं स्वयं अपने कृत कर्मों में सावधानी न रखूँ तो अनर्थ हो जायेगा क्योंकि सम्पूर्ण संसार हमारा ही अनुसरण करता है।<sup>4</sup>

मानव निरन्तर भौतिक सुखों की खोज के लिए ही तत्पर रहता है। जिसके लिए वह सदसद् कर्मों का चिन्तन नहीं करता, परन्तु वेदों में कहा गया है कि सद् कर्मों को करते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए—

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**

**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥<sup>5</sup>**

मनुष्य को अपना सामाजिक परिवेश स्वच्छ और पवित्र रखना चाहिए क्योंकि इसी से हमारा सबल विकास समभव है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए वैदिक ऋषि वाक्य हमें प्रेरणा देता है कि स्वच्छ वातावरण में ही सौ वर्ष तक जीने की कल्पना करनी चाहिए—

**पश्येम् शरदः शतम् जीवेम् शरदः शतम्।<sup>6</sup>**

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है, मनुष्य को बिना फल की इच्छा किये ही कर्म करना चाहिए क्योंकि कर्म पर ही हमारा अधिकार है—

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।<sup>7</sup>**

धर्म ग्रन्थ को अविर्भूत करने वाले आचार्य मनु ने अपनी स्मृति ग्रन्थ में कहा है कि फल की कामना करना प्रशंसनीय है। परन्तु अपने कर्मों को छोड़कर नहीं इसलिए मनु ने कहा है जो भी वैदिक कर्म है उनको नित्य करना चाहिए—

**कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता**

**काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥<sup>8</sup>**

इस प्रकार कर्मयोग के आचरण से मनुष्य व्यक्तिगत आत्मोन्नति के साथ ही समस्त जनों की भी उन्नति को बढ़ाता है। क्योंकि एक आचारवान योगी के लिए कोई भी प्राणी उसका बैरी नहीं होता—

**अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।<sup>9</sup>**

इसलिए गीता में कहा गया है इस संसार में प्रत्येक मनुष्य को बीज रूप में अपने कर्मों को बोना चाहिए।<sup>10</sup> कर्म समाज का एक ऐसा है जो सोते हुए समाज को नित्य जगाता रहता है उसमें नया साधन स्फुरण कर जोश भर उन्हें जागृत करता रहता है, उपनिषदों में कहा गया है—

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरात्रिबोधत।<sup>11</sup>**

चार्वाकों का मत—

**यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।<sup>12</sup>**

इस संसार में जब तक जियो मौज मस्ती से खाओ—पिओ और मस्त रहो ऐसे चर्वाक् मतावलम्बियों का एक कर्म योगी नित्य विरोध करता है, क्योंकि यह हमारे सामाजिक भविष्य के लिए उचित नहीं।

इसी कारण श्रीकृष्ण ने कहा है कर्म प्रधानता मानव का श्रेष्ठ कर्तव्य होना चाहिए। मानव का यह धर्म है कि सृष्टि चक्र के अनुकूल यदि अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता वह आसक्ति या राग में ही लिप्त रहता है तो ऐसा मनुष्य पाप का भागीदार बनता है इस संसार में उसका जीना व्यर्थ है।<sup>13</sup>

इसलिए मनुष्य को राग—द्वेष से प्राप्त होने वाले दुःख और त्याग की भावना से उत्पन्न होने वाले सुख में भली प्रकार भेद समझ लेना चाहिए, क्या उचित है और क्या अनुचित है। इसी परिप्रेक्ष्य में महाभारत में भी कहा गया है कि राग के समान कोई दुःख नहीं और त्याग के समान कोई सुख नहीं—

**नास्ति रागं समं दुःखं, नास्ति त्यागं समं सुखम्।<sup>14</sup>**

इसलिए कर्मों के प्रति लगाव और आसक्ति का त्याग करने से समाज का सन्तुलन बना रहता है, ऐसा कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डालता क्योंकि मनुष्य कर्म करने के लिए विवश है—

**“न हि कश्चिद्विद्यमानो जातु तिष्ठत्यकर्मकृतः।”<sup>15</sup>**

कर्म करने की विवशता इसलिए है क्योंकि गीता में कहा गया है कि जीव का स्वभाव कर्म है—

“स्वभावस्तु प्रवर्तते”<sup>16</sup>

जब मनुष्य अपने कर्तव्य पालन का निर्वहन नहीं करता तो धर्म की हानि अर्थात् जीवन मूल्यों का पतन होता है और सज्जनों के उद्धार तथा दुष्टों के दलन के लिए कोई महान शक्ति समाज में उभरकर समाज को संगठित एवं सन्तुलित करती हैं।<sup>17</sup> इस कारण हमारा भी कर्तव्य है कि हम अपने कर्मों को करें और सामाजिक उत्थान का कारण बनें।

कर्मयोग को दृढ़ करने के लिए उनका समय से पालन करने के लिए और समाज के आचरण को बनाए रखने के लिए पतंजलि ने यम-नियमों का उल्लेख किया है—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।<sup>18</sup>

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि नियमाः<sup>19</sup>

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच यमों तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर और प्राणिधान इन पाँच नियमों के माध्यम से मनुष्य को कर्म करने में धैर्य, दृढ़ता और संयम बना रहता जिससे मनुष्य अपने कर्मों द्वारा अपने समाज का विकास कर देश का गौरव बढ़ाता है और सुखों का भोग करता है।

समाज को हमेशा मनुष्य से कर्म की अपेक्षा रहती है क्योंकि समाज का निर्माण मनुष्यों से होता है मनुष्य के द्वारा ही समाज का विकास या पतन होता है, परन्तु समाज को मनुष्य से उन्नत कर्म की ही अपेक्षा रहती है, इस कारण मनुष्य को नित्य सद् कर्म कर अपने सामाजिक परिवेश को उन्नत बनाना चाहिए। कर्मयोग एक ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य के विचारों और त्याग की भावनाओं पर अश्रित रहता है, क्योंकि कर्म के आधार पर ही मनुष्य को सुख, दुःख प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता कर्मयोग का दर्पण है, जो सम्पूर्ण सृष्टि को एक ही सूत्र में बाँधती है। कर्म एक कड़ी की तरह है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जोड़ती है। इस कारण इस सृष्टि के प्रत्येक

मनुष्य का यह धर्म है, कर्त्तव्य है कि वह अपने समाज के लिए सद् कर्म करे।  
कर्म के विषय में प्रस्तुत भावनात्म शब्द—

पौरुष का गहन ताप पाकर, युग का फौलाद पिघलता है।

सच्चा प्रतिमान कर्म के ही सुन्दर सांचे में ढलता है।।

नैराश्य—निशा में कर्मठता को स्नेहिल दीपक जलता है।

यौवन के ज्योतिर्मय क्षण की सार्थकता कर्म कुशलता है।।

सन्दर्भ—

1. श्रीमद्भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 19, 23, 33, 37 42 पठनीय है।
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 3 / 20
3. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।  
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते गीता 3 / 21
4. गीता, अध्याय तीन, श्लोक 22, 23, 24, 25 दर्शनीय है।
5. शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय 40 / 2
6. वैदिक वाक्य
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 2 / 47
8. मनुस्मृति, 2 / 2
9. पतंजलि योगसूत्र, 2 / 35
10. बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।  
तस्याद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् (गीता 2 / 50)
11. कठोपनिषद् वाक्य
12. चार्वाक दर्शन, 11
13. एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।  
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति गीता 3 / 16
14. महाभारत वाक्य
15. श्रीमद्भगवद्गीता, 3 / 5
16. वही, 5 / 4

17. (क) यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।  
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् (गीता, 4/7)
- (ख) पवित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।  
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे (गीता, 4/8)
18. पतजलि योग सूत्र, 2/30
19. वही, 2/32

## “वैदिक साहित्य में धार्मिक, आर्थिक एवं स्वतंत्रता का अधिकार”

\* रोशन सिंह

वेद सम्पूर्ण जगत् ज्ञान के निधि हैं। वेद इस संसार में जीवनोपयोगी समस्त व्यावहारों के आदि स्रोत हैं। वेद पवित्र ज्ञान राशि का अक्षय भण्डार है। हमारी संस्कृति और सभ्यता के मूल स्रोत हैं।

वेद ऐसी ज्ञान निधि हैं जो हमें साक्षात् ब्रह्म से प्राप्त है। महर्षि बादरायण व्यास ने अपने सूत्र में ब्रह्म को वेद का कारण बतलाया है—

‘शास्त्रयोनित्वात्’<sup>1</sup>

महर्षि दयानन्द ने भी वेदों की उत्पत्ति का समय सृष्टि काल से ही माना है। वेद मानव जीवन को उचित रूप से जीने के लिये प्रकृति प्रदत्त उपहार है।

मानव जीवन—यापन के लिए सहायक प्रत्येक पहलू को वेदों में उजागर किया गया है और वेदों में मानव कर्तव्यों एवम् अधिकारों का विशद वर्णन प्राप्त होता है। अधिकार एवं कर्तव्य एक वस्तु के दो रूप हैं।

वैदिक वाङ्मय में शैक्षिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, स्वतन्त्रता और चारित्रिक आदि विभिन्न अधिकारों का विशद विवेचन प्राप्त होता है, जिनमें से कुछ प्रमुख अधिकारों का वर्णन किया जा रहा है।

**धार्मिक अधिकार—**

धार्मिक दृष्टि से वेद भारत में सर्वोपरि हैं। आचार्य मनु ने वेदों को सभी धर्मों का मूल कहा है—

‘वेदोऽखिलो धर्ममूलम्’<sup>2</sup>

मनुष्य का दायित्व या कर्तव्य पालन ही मानव का सर्वप्रथम धर्म है। वेद सभी विद्याओं के स्रोत हैं तथा मानवमात्र के कर्तव्य ज्ञान के लिए आचार्य मनु वेदों को ही आधार मानते हैं—

\* शोध छात्र, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

यः कश्चित् कश्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।

स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः ।।<sup>3</sup>

यजुर्वेद में कहा गया है कि वेद पढ़ने का अधिकार सभी मनुष्यों को है। वेद की कल्याणकारी वाणी मानव मात्र के लिये ही दी गई है। चाहे वह ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र हो या अतिशूद्र कोई भी हो, वह पवित्र गंगाजल के तुल्य है। जो भी वेद का अध्ययन कर जहाँ भी रहेगा, वहाँ स्वयं शुद्धि रहेगी तथा दूसरों की पवित्रता प्राप्त होगी—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च, स्वाय चारणाय च ।।<sup>4</sup>

वेदों में जहाँ तेजस्विता, अभ्युदय और श्री वृद्धि की कामना की गई है, वहाँ बिना किसी भेद के चारों वर्णों का उल्लेख है—

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नमस्कृधि ।

रुचं विश्वेषु, शूद्रेषु, मयि धेहि रुचा रुचम् ।।<sup>5</sup>

ऋग्वेद में वर्णन प्राप्त होता है कि उस समय स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार प्रदान किया गया था, स्त्रियों को यज्ञोपवीत पहनना, वेदमन्त्रों का पाठ करना, वेदाध्ययन करना और प्रवचन का भी अधिकार था—

या दम्पती समनसा, सुनुत आ च धावतः ।<sup>6</sup>

पुराकल्पे तु नारीणां मौजी—बन्धनमिष्यते ।

अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ।।<sup>7</sup>

आर्थिक अधिकार—

मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है अर्थ (धन) इसलिये वेदों में प्रत्येक मनुष्य को आर्थिक अधिकार प्रदान किया गया है। अर्थ का शाब्दिक अर्थ धन है। जीवन को सही ढंग से चलाने के लिये तथा उसकी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिये धन आवश्यक है। परिवार का भरण—पोषण हो या भौतिक सुख अर्जित करने की इच्छा दोनों स्थिति में धन आवश्यक है। यजुर्वेद में प्रत्येक व्यक्ति को धन अर्जित करने तथा संग्रह का अधिकार दिया गया है। धन संग्रह और धन की सुरक्षा के लिये योग शब्द आया है।

यजुर्वेद में कहा गया है कि हम धन के स्वामी हों और हमें योगक्षेम प्राप्त हो—

(क) वयं स्वाय पतयो रयीणाम् ।<sup>8</sup>

(ख) योगक्षेमो नः कल्पताम् ।<sup>9</sup>

धनोपार्जन के अधिकार के साथ गलत साधनों से कमाये गये धन को वेदों में उचित नहीं माना गया है। इस दृष्टि से कि कहीं हम धन प्राप्ति की लगन में कुमार्ग से धन कमाने में प्रवृत्त न हो जाए ऋग्वेद के एक मन्त्र में वर्णन किया गया है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेणा, भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥<sup>10</sup>

वेदों में ईमानदारी से धन कमाने पर अधिक बल दिया गया है। वर्तमान में धन कमाने के माध्यमों की पवित्रता का तो परित्याग ही कर दिया गया है। इस पर कोई भी ध्यान नहीं देता कि पवित्र साधन से उत्तम फल प्राप्त होता है। इसी कारण प्रस्तुत मन्त्र में वेद हमें उपदेश देते हैं कि सतत् सतर्क रहकर आत्म निरीक्षण करते रहना चाहिये जिससे पाप की लक्ष्मी पास न आ जाये—

एता एना व्याकरं खिले गा विष्टिता इव ।

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥<sup>11</sup>

अर्थात् जैसे कोई अपनी गौशाला में आई हुई गौओं की जाँच करता है कि यह मेरी है या नहीं, उसी प्रकार मैं अपने पास आई हुई लक्ष्मी का निरीक्षण करता हूँ जो पुण्य की लक्ष्मी है उसे मैं पास रहने देता हूँ और जो पाप-युक्त लक्ष्मी है, उसे हटा देता हूँ।

अत एव इसमें साध्य और साधन की एकरूपता का निर्देश है तथा प्रार्थना की गई है कि हमें नैतिकता पर आधारित साधन द्वारा धन प्राप्ति करने के लिए प्रेरित कीजिये। वेद का भी उपदेश है—

माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।<sup>12</sup>

समुचित अर्थव्यवस्था के लिये एक महत्त्वपूर्ण मन्त्र दिया गया है कि हम समाज को दें और समाज से लें। लेन-देन से ही समाज चलता है। हम



मूल्य से वस्तु लें और मूल्य से वस्तु दें—

(क) देही मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।

निहारं च हरासि मे निहारं नि हाराणि ते ॥<sup>13</sup>

(ख) वस्नेव विक्रीणावहै ।<sup>14</sup>

ऋग्वेद में केवल अपने देश में ही नहीं, अपितु समुद्र पार अन्य देशों से भी व्यापार से धन एकत्र करने का अधिकार मनुष्य को दिया गया है—

(क) समुद्रस्य चिद् धनयन्त पारे ।<sup>15</sup>

(ख) समुद्रे न श्रवस्यवः ।<sup>16</sup>

अथर्ववेद के एक मन्त्र से भ्रष्टाचार के विरुद्ध चेतावनी भी दी गई है कि अनुचित साधनों या भ्रष्टाचार से प्राप्त लक्ष्मी मनुष्य को इसी प्रकार नष्ट कर देती है जिस प्रकार आकाश बेल वृक्ष को । अतः उचित साधनों से प्राप्त शुभ लक्ष्मी को अपनावे और भ्रष्ट साधनों से प्राप्त अशुभ लक्ष्मी का त्याग कर दें ।

(क) या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाऽभीचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।

अन्यस्मात् सवितस्तामितो धाः ॥<sup>17</sup>

(ख) रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः, याः पापीस्ता अनीनशम् ।<sup>18</sup>

स्वतन्त्रता का अधिकार—

स्वतन्त्रता मानव—जीवन का सर्वप्रथम अधिकार है, इसलिए वेदों में स्वाधीनता को राष्ट्रीय अधिकार बताया गया है । ऋग्वेद के (1 / 80) सोलह मन्त्रों में स्वराज्य की स्तुति की गई है । यजुर्वेद में राष्ट्र को स्वतन्त्र रखने का अधिकार दिया गया है—

स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त ।<sup>19</sup>

जहाँ मनुष्य को स्वतन्त्र स्वराज्य में रहने का अधिकार है तो उस स्वतन्त्रता को स्थिर और मजबूत रखना भी अति आवश्यक है । ऋग्वेद में कहा गया है कि आन्दोलन से ही स्वतन्त्र राज्य की प्राप्ति होती है तथा स्वतन्त्र राज्य में ही सब प्रकार की उन्नति और विकास होता है । पराधीन

रहकर नहीं। इसलिये देश में जो अपराधी, पापी और भ्रष्टाचारी जन हैं, तुम उनको अधिकार पूर्वक, बलपूर्वक नष्ट करो, उनके लिये कटु और कठोर उपाय करना पड़े तो उनको भी करो। किसी भी देवता या किसी भी महान शक्ति को हमारे राष्ट्र की स्वतन्त्रता को बाधित करने का अधिकार नहीं है—

(क) अर्चन अनु स्वराज्यम् ।<sup>20</sup>

(ख) अस्य हि स्वयशस्तरं, सवितुः कच्चन प्रियम् ।  
न मिनन्ति स्वराज्यम् ।<sup>21</sup>

अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में स्वतन्त्रता की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा गया है कि स्वतन्त्र स्वराज्य से सुख—सम्पत्ति मिलती है और विकास होता है इस विकास के लिये ही स्वराज्य की कामना की गई है—

वस्वीरनु स्वराज्यम् ।<sup>22</sup>

इसी मन्त्र के द्वारा सामवेद में राष्ट्र की समृद्धि की कामना की गई है—

वस्वीरनु स्वराज्यम् ।<sup>23</sup>

ऋग्वेद की एक ऋचा में स्वराज्य की महत्ता का विशद वर्णन किया गया है। ऋग्वेद का कथन है कि सामूहिक प्रयत्न से ही स्वराज्य प्राप्त होता है। स्वराज्य का क्षेत्र व्यापक है, यह बहुतों के प्रयत्न से मिलता है। स्वराज्य को सम्भाल कर रखना एक व्यक्ति का नहीं, अपितु सबका कर्तव्य है। इसके लिये एक महत्त्वपूर्ण शब्द **बहुपाय्ये** दिया गया है। इसका अर्थ है कि इसकी सुरक्षा के लिये निःस्वार्थ बहुत लोगों का प्रयत्न वाञ्छनीय है। 'व्यचिष्टे' शब्द भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसका अभिप्राय यह है कि स्वतन्त्रता का अभिप्राय बहुत व्यापक है, इसमें न केवल स्वतन्त्रता ही आती है अपितु आर्थिक विकास, सामाजिक उन्नति, वैयक्तिक उन्नति और सबको सुख—शान्तिमय जीवन बिताने का अवसर प्राप्त होता है—

व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ।<sup>24</sup>

यजुर्वेद में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि राष्ट्र में एक महान जनतान्त्रिक राज्य की स्थापना की जानी चाहिये, जिससे जनता

को अपना अधिकार प्राप्त हो सके—

**महते क्षत्राय, महते जानराज्याय ।<sup>25</sup>**

अथर्ववेद में प्रजा को अधिकार दिया गया है कि वह अपना राजा चुनें। जहाँ प्रजा को राजा चुनने का अधिकार दिया गया है वहीं प्रजा के कर्तव्यों के भी निर्देश है कि वह राष्ट्र को माता के तुल्य पूज्य समझें, सदा जागरुक रहें और देश रक्षार्थ बलिदान होने के लिये तत्पर रहें—

**(क) त्वां विशो वृणतां राज्याय ।<sup>26</sup>**

**(ख) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।<sup>27</sup>**

**(ग) वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।<sup>28</sup>**

**(ख) वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ।<sup>29</sup>**

इस प्रकार हमें वेदों में मानव अधिकारों से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। आज समाज को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना और अपने कर्तव्य पालन के प्रति भी जागरुक रहना आवश्यक है, क्योंकि हमारे द्वारा निर्भाई गयी कर्तव्यनिष्ठा ही दूसरे का अधिकार है, और दूसरे के अधिकारों को सुरक्षित रखना ही हमारा दायित्व है।

**सन्दर्भ—**

1. ब्रह्मसूत्र
2. मनुस्मृति, 2/6
3. मनुस्मृति, 2/7
4. यजुर्वेद, 26.2
5. वही, 18.48
6. ऋग्वेद, 8.31.5
7. मनुस्मृति, 30
8. यजुर्वेद, 10.20
9. वही, 22.22
10. ऋग्वेद, 1.189.1
11. अथर्ववेद, 7.115.4

12. ऋग्वेद, 2.28.9
13. यजुर्वेद, 3.50
14. वही, 3.49
15. ऋग्वेद, 1.167.2
16. वही, 1.48.3
17. अथर्ववेद, 7.115.2
18. वही, 7.115.5
19. यजुर्वेद, 10.4
20. ऋग्वेद, 1.80.1
21. वही, 5.82.2
22. अथर्ववेद, 20.109.2
23. सामवेद, 1006
24. ऋग्वेद, 5.66.6
25. यजुर्वेद, 9.40
26. अथर्ववेद, 3.4.2
27. वही, 12.1.12
28. वही, 12.1.62
29. यजुर्वेद, 9.23

## वैदिक नदियाँ एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनका महत्त्व

\* पूजा जायसवाल

इस चराचर जगत् में सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक जड़ से लेकर चेतन तक समस्त समष्टियाँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। सृष्टि का प्रत्येक कण एक दूसरे कण के लिए अस्तित्ववान है। अकारण ही किसी एक का संवर्द्धन तथा संरक्षण दूसरे के विकास में सहायक बन जाता है। जीवन की अनुकूल परिस्थितियों के लिए पंचभौतिक संघटन में संतुलन और सामंजस्य की महती आवश्यकता है। संतुलन और सामंजस्य के अभाव में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कहीं भी जीव सम्भव नहीं। सृष्टि को संतुलित बनाने तथा जीवन प्रदान करने में जल की महती भूमिका है इसके अभाव में जगत् में कुछ भी सम्भव नहीं है। जल ही कभी हिम के रूप में वायुमण्डलीय ताप पर नियंत्रण रखता है, कभी तुषार के रूप में अन्तरिक्ष में ताप का शमन करता है। सूर्य के ताप को भी सह्य बनाने वाला कारक भी जल ही है। जलवाहिनी, जीवनदायिनी नदियाँ न केवल मनुष्य और अन्य जीवों को जीवन देती हैं अपितु पर्यावरण संरक्षण में महती भूमिका प्रदान करती हैं। मनवीय सभ्यता के विकास में नदियों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। वास्तव में विश्व की विभिन्न सांस्कृतिक एवं भौगोलिक रचनाओं में निवास करने वाली गति और चेतना की प्राण प्रतिष्ठा का श्रेय नदियों को ही है। हमारी भारतीय संस्कृति के विकास में सिन्धु, गंगा, सरस्वती, नर्मदा आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यही कारण रहा है कि भारतीय मनीषा नदियों को अत्यन्त श्रद्धा के साथ विश्व की माता के रूप में स्वीकृत करती है और भारतीय जन-मानस उन्हें फलदायिनी देवी के रूप में प्रतिष्ठित करता है—

“आ यत् साकं यशसो वादशानाः सरस्वती सप्तधी सिन्धुमाता।”<sup>1</sup>

वैदिक वाङ्मय में प्रायः 31 नदियों का उल्लेख है, जिनमें से 25 नदियों के नाम ऋग्वेद में ही दिये गये हैं। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध नदी सूक्त में यमुना और शुतुद्रि (सतलज) के बीच सरस्वती का नामोल्लेख है। इसमें कई

\* शोधच्छात्रा, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ।

नदियों का उल्लेख है जिन्हें पूर्व से पश्चिम की स्थिति के अनुसार वर्णित किया गया है—

“इमं में गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।

असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया जीकीयेशृणुद्या सुषोमया ॥”<sup>2</sup>

“तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया भवेत्यात्या ।

त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्त्वा सरथं याभिरियसे ॥”<sup>3</sup>

भारत की नदियों में सरस्वती एक प्रमुख नदी थी। इसके अंक में आदि भारतीय सभ्यता का विकास हुआ और ऐसी परम्पराओं का आविर्भाव हुआ जो आज भी हमारे सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग है। ऋग्वेद में सरस्वती को अम्बितमे, नदीतमे, देवितमे कहा गया है—

“अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मसि

प्रशस्तिमम्ब नशकृधि ॥”<sup>4</sup>

विशाल जल राशि युक्त विशिष्ट बल सम्पन्न तथा वृषभ के समान गर्जना करती हुयी प्रवाहित होने वाली सिन्धु नदी के प्रति वैदिक ऋषियों के हृदय में प्रचुर आकर्षण दिखाई देता है। सरस्वती एवं सिन्धु के साथ यदि पंजाब प्रान्त की पाँच नदियों को मिला दिया जाये तो सप्त सैन्धव प्रदेश की नदियों का बिम्ब उभर आता है। ये हैं— शुतुद्रि (सतलज), विपाशा (व्यास), परुष्णी (रावी), असिकनी (चिनाव), तथा वितस्ता (झेलम), सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियों में रसा, कुभा (काबुल), क्रुमु (कुर्रम), गोमती (गोमल), सुसर्तु व श्वेत्या (कुभा के उत्तर), मेहत्नु (कुभा के दक्षिण), सुवास्तु (स्वात) तथा हरियूपीया के नाम उल्लेखनीय हैं। एक मन्त्र में सरस्वती की सहायक दृशद्वती तथा आपया नदी का भी उल्लेख है—

“नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इतायास्पदे सुदिनत्वे अहास ।

दृशद्वत्या मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥”<sup>5</sup>

जबकि वाजसनेयि संहिता में इसकी 5 सहायक नदियों का उल्लेख मिलता है—

‘पंच नद्यु सरस्वतीमपियन्ति सप्तोतसः ।

सरस्वती तु पंचधासो देशे भवत् सरित ।<sup>6</sup>

इसके अतिरिक्त कुभा सिन्धु की महत्त्वपूर्ण सहायक नदी है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में किया गया है—

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमु मा वः सिन्धुर्निरीरमत् ।

मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिव्यस्मे इत् सुम्नमस्तु वः ।।<sup>7</sup>

गङ्गा यमुना के नामों का भी उल्लेख है किन्तु ये ऋग्वैदिक काल में वर्तमान विशिष्टता नहीं प्राप्त सकी थीं। 'उरुकक्षो न गाङ्ग्यः'<sup>8</sup> इसी एक मन्त्र में गङ्गा का स्पष्ट नाम आया है। इस अंश में गङ्गातीरोत्पन्न व्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त गङ्ग्य शब्द से नदी का संकेत माना जा सकता है, पर यह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। गङ्गा से आर्यों का परिचय पीछे चलकर हुआ है इसी कारण उल्लेखों की कमी है। शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11), जैमिनीय ब्राह्मण (3.83), तैत्तिरीय आरण्यक (2.10) में गङ्गा का नाम मिलता है। यमुना नदी का नामोल्लेख ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण के अनेक स्थल पर आता है।

नदियाँ आदिकाल से उपलब्ध जल के प्राकृतिक संसाधन के रूप में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती रही है। इन्हीं नदियों के किनारों पर समृद्ध सांस्कृतिक जीवन पल्लवित पुष्पित हुआ। यजुर्वेद में वैदिक संस्कृति का केन्द्र पूर्व की ओर अग्रसर होते हुए दिखलाई देता है। यह प्रदेश सतलज एवं यमुना का मध्यवर्ती था। पांचाल प्रदेश गङ्गा—यमुना की अन्तर्वेदी में स्थित था। वैदिक धर्म संस्कृति और दर्शन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की मीमांसा कुरु—पांचाल जनपदों के ब्रह्मवादियों के ही मध्य हुयी। जीवन और जगत की जटिलताओं का विचारपूर्ण विश्लेषण प्रायः इसी शस्यश्यामला भूमि पर हुआ।<sup>9</sup> सरस्वती नदी द्वारा सिंचित भूमि उर्वरा थी। इसकी घाटी में अत्यधिक मात्रा में अन्न का उत्पादन होता था—

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती<sup>10</sup>

परुष्णी तथा सिन्धु नदियों का प्रदेश उस समय ऊन की उपज तथा ऊनी शिल्प के लिए प्रसिद्ध था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में मरुतों का वर्णन

परुष्णी प्रदेश में निर्मित शुद्ध ऊनी वस्त्र पहने हुए किया गया है—

**उत स्म ते परुष्ण्यामर्णा वसत शुन्ध्यवः।<sup>11</sup>**

अतएव जलवाहिनी, जीवनदायिनी नदियों के महत्त्व को वर्तमान में भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। औद्योगीकरण, बढ़ती आबादी, जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के कारण भविष्य में सतह पर मौजूद पानी की अनुपलब्धता सबसे बड़े संकट का सबब बनने वाली है। ऐसी चिन्ताजनक परिस्थिति में नदियों का संरक्षण अत्यन्त विचारणीय विषय है। जल संरक्षण एवं संवर्द्धन के अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। इस वर्ष देश के जल सप्ताह यानी जनवरी 13-17 के समय एक अभियान **हमारा जल — हमारा जीवन** चलाया गया। बरसात के पानी को समुद्र में पहुँचाकर नष्ट होने से बचाने के लिए और इसे देश की सभी नदियों तक पहुँचाने के लिए **नदी जोड़ो** परियोजना चलायी जा रही है। नदी की स्वच्छता के लिये **'नमामि गङ्गे'** जैसी परियोजनाएँ हैं।

यद्यपि हमारा प्रशानिक तन्त्र नदियों के संवर्द्धन, संरक्षण के प्रति प्रतिबद्ध हो रहा है। लेकिन इस समस्या से मुक्ति पाने के लिए सबसे बड़ी जरूरत जन जागरूकता की है, क्योंकि इस चुनौती का सामूहिक एवं स्वेच्छा से मुकाबला किये बिना गङ्गा जैसी नदियाँ हमारा उद्धार नहीं कर सकती और नदियों के बिना नदियों की घाटियों में जीवन सम्भव नहीं है। अतएव इनके रक्षार्थ जो प्रयास नहीं करता वह स्वयं के प्रति आत्मघात कर रहा है।

**सन्दर्भ —**

1. ऋग्वेद संहिता 7.36.6
2. वही 10.75.5
3. वही 10.75.6
4. वही 2.41.6
5. ऋग्वेद संहिता
6. वाजसनेयि संहिता 34.11



7. ऋग्वेद संहिता 5.53.9
8. वही 6.45.31
9. वैदिक साहित्य और संस्कृति का समीक्षात्मक इतिहास – प्रो०  
ओम् प्रकाश पाण्डेय
10. ऋग्वेद संहिता 1.3.10
11. वही 5.52.9

## ‘नव-औपनिवेशिकता एवं हिन्दी-आदिवासी उपन्यास’

\* योगेन्द्र कुमार सिंह

उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन का महाकाव्य ही नहीं रहा, बल्कि वह उपेक्षितों के स्वप्न, संघर्ष एवं यातना का जीवन वृत्त भी है, जो एक ओर मुक्ति की बेचैनी देता है तो दूसरी ओर नये रास्तों की तलाश भी करता है। शायद इसीलिए हीगेल ने उपन्यास को आधुनिक जीवन का महाकाव्य माना है। वस्तुतः साहित्य और समाज के संबंध देश-देशान्तर के अनुरूप बदलते रहते हैं, यही कारण है कि 1857 की क्रांति के बाद प्रचलित हुई उपन्यास विधा, औपनिवेशिकता, उत्तर-औपनिवेशिकता एवं नव-औपनिवेशिकता के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक पड़ावों के साथ अलग-अलग चिंतन दृष्टियों को सामने लाती रही है। जहाँ शुरुआती दौर के ऐयारी और तिलिस्मी उपन्यास उपनिवेशवाद के विरोध का रूपक गढ़ते हैं वहीं द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के उपन्यास आजाद हुए तमाम उपनिवेशों की स्थितियों का ब्योरा देते हुए नव-उपनिवेशवादी साजिशों भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण का पर्दाफाश करते हैं। भारतीय समाज के संदर्भ में उपन्यास उपनिवेश, सामंत और जन से शुरू होकर पूँजीवाद, लोकतंत्र और भीड़ से होते हुए नव-औपनिवेशिकता, भूमण्डलीकरण और उपभोक्ता के अंतः संबंधों की व्याख्या करता है। भारतीयता (परिस्थितियाँ, पाठक और देशकाल) और हिन्दी उपन्यास के रिश्तों की समझ के लिए ‘मैनेजर पाण्डेय’ ने लिखा है— “उपन्यास के उदय और विकास के लिए अर्थात् उसके अस्तित्व के लिए कुछ ऐसे भौतिक और विचारधारात्मक आधारों की जरूरत थी, जो आधुनिक युग में ही विकसित हुए। उपन्यास के अस्तित्व के लिए अनिवार्य प्रेस, प्रकाशन और पत्र-पत्रिका आधुनिक युग के वैज्ञानिक विकास की देन है तो उसके लेखक और पाठक के रूप में क्रियाशील मध्यवर्ग पूँजीवादी सामाजिक संरचना का परिणाम है। इन भौतिक आधारों के साथ-साथ विचारधारा के स्तर पर व्यक्तिवाद,

\* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

धर्मनिरपेक्ष जीवन दृष्टि और यथार्थवादी जीवन दृष्टि की जरूरत थी जो आधुनिक युग की विवेकवादी चेतना की उपज है। उपन्यास की रचना दृष्टि में मनुष्य की स्वतंत्रता, व्यक्ति की महत्ता और मानवीय संबंधों की गरिमा को तभी केन्द्रीय महत्व मिला, जब आधुनिक मानस अपने अनुभव और तर्क के अलावा किसी अलौकिक शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार न था।<sup>3</sup>

उपन्यास वस्तुतः मध्ययुगीनता के विरुद्ध आधुनिकता की अभिव्यक्ति के रूप में मनुष्य की स्वतंत्रता, व्यक्ति की महत्ता और मानवीय संबंधों की गरिमा के विरोध में खड़ी शक्तियों का प्रतिपक्ष है। आदिवासियों का संपूर्ण साहित्य इस प्रतिपक्ष की भूमिका में पूरी जवाबदेही के साथ लैस है, उपन्यास के साथ-साथ विभिन्न साहित्यिक विधाओं में उसकी गति है। रमणिका गुप्ता ने आदिवासी साहित्य की भूमिका को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि, '..... अदिवासियों में समकालीन लोक गीतों-लोक कथाओं, लिजिंद्रियों, वीर गाथाओं, पर्वों, त्योहारों के गीतों और अनुष्ठानों की महान परम्परा है, जिसमें उनका ही नहीं, बल्कि पृथ्वी का इतिहास भी दिया है..... आदिवासी लेखक अपने समकालीन जीवन के सत्य पर, इनसब समस्याओं पर प्रश्न पूछ रहा है- उत्तर पूछ रहा है- समाधान सुझा रहा है।..... उनकी कलम बिरसा के उलगुलान पर, झारखंड के जंगलों में अंग्रेजों के खिलाफ हुए सन्थाल विद्रोह पर, सिद्दो-कानू को दी गई फांसी पर सतत चल रही है।'<sup>4</sup> प्रस्तुत संदर्भ आदिवासियों के साहित्य की गरिमा और विस्तार का ही ब्यौरा नहीं बल्कि उपनिवेशवाद के प्रतिरोध अत्याचार और यातना का भी संकेत है। आदिवासी लेखन में समकालीन चिंताओं की यह प्रवृत्ति बदली स्थितियों के साथ भी लक्षित है, जिसका उदाहरण उपनिवेशवाद से नव-उपनिवेशवाद के प्रतिरोध की यात्रा में मौजूद है।

विश्व के पूंजीवादी मुल्कों ने तमाम उपनिवेशों को आर्थिक दृष्टि से पुनः गुलाम बनाने के लिए भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के रूपक रचे जो नव-उपनिवेशवाद की अभिनव आक्रामकता का परिणाम है।

नव-उपनिवेशवाद आधुनिक नवाचार की समाज वैज्ञानिक शब्दावली ही नहीं, बल्कि अपने अर्थ में औपनिवेशिक शक्तियों की उस मंशा का अर्थशास्त्र भी है, जो पूँजीवादी नवीन शक्तियों के गठजोड़ से नवस्वतंत्र उपनिवेशों को पुनः आर्थिक गुलामी को विवश करता है। भारत को 15 अगस्त बनाम 24 जुलाई के अर्थों में परखने पर एक बड़ी परिघटना लक्षित होती है, जहाँ 14 अगस्त की रात 12:00 बजे मिली आजादी लगभग 44 वर्षों के बाद यूरोपीय मुल्कों की औपनिवेशिक चाहत और अमेरिकी पूँजीवादी वर्चस्व के साथ घुल मिलकर 24 जुलाई 1991 ई० को भूमण्डलीकरण के रूप में अपनी आर्थिक संप्रभुता उन हाथों में सौंप देती है, जो पूरी तरह से न तो ईमानदार थे, न स्वदेशी। नव-उपनिवेशवादी चाहत और भूमण्डलीकरण के मायावी विकास की परतों को अभय कुमार दुबे ने इस तरह खोलने की कोशिश की है, "पहली नजर में लगता है कि भूमण्डलीकरण का यह पल अचानक कहीं से आया और हम पर हावी हो गया। लेकिन, असल में इस लम्हे के लिये धीरे-धीरे कई साल से राष्ट्रालीत और अतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक जमीन पक रही थी। यह पल तब आया जब साकार राष्ट्र की वैकासिक आधुनिकता अपने वायदों को पूरा करने में पूरी तरह नाकाम हो गयी। यानी भारतीय रिजर्व बैंक के पास केवल दो हफ्ते के आयात का बिल चुकाने लायक विदेशी मुद्रा रह गयी .... यह पल तब आया जब दुनिया के पैमाने पर गैर पूँजीवादी वर्चस्व बनाने की कोशिशें करने वाला सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप का समाजवादी शिराजा बिखर गया.....। अगर 15 अगस्त राजनीतिक आजादी का दिन माना जायेगा तो 24 जुलाई को आर्थिक आजादी का प्रतीक समझा जाना चाहिए ..... यहीं से विवाद की शुरुआत हुई, क्योंकि यह आर्थिक आजादी परमिट-कोटा राज खत्म करके एक ऐसा निजाम बनाने की कोशिश भर नहीं थी, जिसमें राष्ट्र और उसके नागरिकों के लाभ का आग्रह सर्वोपरि होता। इस आर्थिक आजादी का मतलब यह था कि न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्वबाजार के साथ जुड़ते चले जाना है, वरन भारतीय वित्तमन्त्री को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार

संगठन के दफ्तर जाकर अपने कामों का हिसाब भी देना है। उसे अन्तर्राष्ट्रीय ऐंजंसियों द्वारा दी गयी सनद का मोहताज रहना है।<sup>5</sup>

वस्तुतः पुरानी अर्थनीतियों से आजिज आ चुके लोगों ने एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था के अप्राप्य लक्ष्यों ने देश को नयी नीतियों की ओर मोड़ा जहाँ 24 जुलाई आर्थिक आजादी के सुनहरे ख्वाब के परिवेश में अंतहीन अंधेरो और चुनौतियों को साथ लाया। प्रश्न यह भी है कि आर०बी० आई० के पास दो हफ्ते से अधिक आयात की विदेशी मुद्रा का न रह जाना, क्या नव—उपनिवेशवादी प्रपंचो का परिणाम न थी? विकास और उन्नति का चेहरा ओढ़कर आने वाला नव—उपनिवेशवादी आर्थिक शोषण के लिए उपनिवेशित की संस्कृति, भाषा, विचार, समाज, आदि को अपने मुताबिक ढालने की साजिश रचता है, वह पहले अभाव पैदा करता है और फिर उसे भरने के नाम पर आर्थिक दोहन की प्रक्रिया वह बाजार, विज्ञापन और विकास के स्वप्नों को हथियार बनाकर करता है। भारत के पास बची मुट्ठी पर विदेशी पूँजी उसी अभाव का और भूमण्डलीकरण को ओढ़े गये विकास और उन्नति के चेहरे का प्रतीक समझा जाना चाहिए।

स्वतंत्र घाना के प्रथम राष्ट्रपति ने अपनी 1965 ई० में लिखी पुस्तक 'नियो कोलोनियलिज्म: द लास्ट स्टेज ऑफ इम्पीरियलिज्म' में नव—उपनिवेशवाद को सम्राज्यवाद की चरम अवस्था माना। नव—उपनिवेशवाद को घाना के राष्ट्रपति ने अतीत की यूरोपीय औपनिवेशिक ताकतों और नयी विश्व महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका की उस साझीदारी के रूप में देखा जिसमें अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थाओं (विश्व बैंक तथा आई०एम०एफ०आदि) के जरिए विश्वबाजार को नियंत्रित करके बहुराष्ट्रीय निगमों का जाल फैलाकर तथा सैकड़ों किस्म की सांस्कृतिक शैक्षणिक संस्थाओं के नेटवर्क के माध्यम से औपनिवेशिक पिंजरे से आजाद हुए मुल्कों को पुनः अपने अधीन करने का लक्ष्य था। यद्यपि इस तथ्य को नव—उपनिवेशवाद की चाहत और भूमण्डलीकरण के विकास के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया जा चुका है। 'प्रणय कृष्ण' ने इस संपूर्ण खेल को 'नूक्रेमाह' की दृष्टि से इस प्रकार

स्पष्ट किया है "वास्तव में नूक्रेमाह ने जिसे नव-उपनिवेशवाद कहा था। वह प्रक्रिया ही आगे चलकर भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के वर्तमान दौर में विकसित हुई। भूमण्डलीकरण प्रभात पटनायक के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी के हित में राष्ट्र राज्यों को समाप्त करने की जगह उनकी संप्रभुता को खत्म करता है और एक नई विश्व व्यवस्था कायम करता है।"<sup>6</sup>

इस प्रकार नव-औपनिवेशिकता का रेखांकन संपूर्ण हिंदी साहित्य में बाजारवाद के विरोध, रिशतों की टूटन, विस्थापितों की चिंता, संस्कृति संरक्षण, दलितों-आदिवासियों की बदलती प्राथमिकताओं, पावर वूमैन (बाजार में स्त्री नहीं, बाजार की स्त्री) के रहस्योद्घाटन और सत्ता की दलाल राजनीति की आलोचना के रूप में किया जा सकता है और यही प्रवृत्तियाँ मिलकर कमोबेश नयी सदी के साहित्य की केन्द्रीय संवदेना का निर्माण भी करती है, चाहे वह किसी भी विधा की हो या किसी भी विमर्श की।

नव-औपनिवेशिकता का यह मापन विमर्श के क्षेत्र में उतरकर आदिवासी जीवन के हस्तक्षेप के कारणों में इस प्रकार भी होता है कि यह साजिश सिर्फ संस्कृति को ही नहीं, बल्कि प्रकृति निर्मित उन संसाधनों पर एकाधिकार जमाने की भी है जिससे मनुष्य का दैहिक और बुनियादी विकास जुड़ा है। यह सवाल दुनिया के तेल क्षेत्रों पर कब्जा जमाने की अमेरिकी चौधराहट से लेकर विकास की शकल में विकसनशील देशों को शोषण के द्वीप बनाने की चालबाजी तक मौजूद है। यह बात दीगर है कि प्रकृति के सर्वाधिक संसाधन आज भी मानवीय दखल से दूर जंगलों में और संस्कृति व भाषा के शिष्टतम रूप उनके अंतःवासी आदिवासियों में मौजूद हैं। इन तत्वों पर अधिकार पाने के लिए सत्ता की दलाल राजनीतिक-संस्कृति की आलोचना 'रणेन्द्र' के उपन्यास 'ग्लोबल गॉव के देवता' में इस प्रकार हुई है—

"राष्ट्र-राज्य की हिंसा का कोई जवाब नहीं हो सकता।..... यही

एक मात्र संस्था है जिसने हिंसा को भी सांस्थानिक रूप दिया है। उसकी सेना, सशस्त्र बल सब सैद्धांतिक तौर पर हिंसा के लिए ही प्रशिक्षित है। राष्ट्र—राज्य अपने को सुरक्षित रखने के लिए इन्सानों का इन्सानों के द्वारा ही नाश कराता है।<sup>7</sup>

जब सत्ता के लिए राजनीति स्वार्थ की दौड़ में भटकाव की बलि चढ़ती है तो वह राष्ट्र राज्य को पथ भ्रष्ट कर डालती है और वह लोक कल्याण की अवधारणा से भटक कर शोषण, अत्याचार और निर्ममता का अंग बन जाता है। आदिवासियों के तमाम उपन्यास नव—औपनिवेशिकता की इन प्रवृत्तियों का रेखांकन अलग—अलग रूपों में करते हैं, सभी कथानकों में बहुतसी उभयनिष्ठताओं के बाद भी आदिवासियों की चिंताओं को अलग—अलग तरह से कहने की लालसा सामने आती है। यद्यपि आदिवासी उपन्यास लेखन की दृष्टि से प्रेमचन्द (गोदान) और रेणु (मैला ऑचल) के उपन्यासों से ही सामान्य लय—तान प्राप्त करने लगते हैं लेकिन रूपतिल्ली की कथा, पठार पर कोहरा, पॉव तले की दूब और ग्लोबल गाँव के देवता आदि उपन्यास इस लयतान को स्पष्ट स्वर, अंसंतोष की भर्राहट और बदलाव के शोर तक ले जाते हैं। तथापि यह उपन्यास सामान्य तौर पर आदिवासी जीवन, संस्कृति और उनकी बेचारगी का दस्तावेज लगते हैं। लेकिन इन कथानक रूढ़ियों के पार उपन्यास नव—औपनिवेशिकता की भूमण्डलीकृत बाजारवादी, वैकासिक विनाशवादी, राष्ट्र—राज्य के झूठे सच, स्त्री अस्मिता को विकृत करने की नीतियों का रेखांकन भी करते हैं।

रणेन्द्र ने बाजारवादी विकास और पूंजी के प्रपंच को ग्लोबल गाँव के देवता में इसी चिंता के साथ उभारा है, जहाँ पूरी कोमलता, मानवीयता और निश्छलता के साथ मौजूद असुर जनजाति बाजारवादी शक्तियों से विघटित होने लगती है<sup>8</sup> इस बार कथा— कहानी वाले सिंग बोगा ने नहीं, टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया है। उनकी फैक्ट्रियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैता, खंती सूदूर हाटों तक पहुँच गए। हमारे गलाए

लोहे के औजारों की पूछ खत्म हो गयी। लोहा गलाने के हजारों—हजार साल का हमारा हुनर धीरे—धीरे खत्म हो गया।<sup>8</sup> यह प्रसंग न सिर्फ आदिवासियों की संस्कृति बल्कि उनके रोजगार और आजीविका के मसलो पर भी सवाल खड़ा करता है। विकास की यह तथाकथित लहर किस रूप में आदिवासी समाज के मनोविज्ञान को बदल रही है और लोभ लालच की स्थापित प्रवृत्तियाँ नये रूपों में सामने आ रही है इसका उद्घाटन 'प्रतिभा राय' का उपन्यास 'आदिभूमि' बड़ी बारीकी से करता है। आदिभूमि उपन्यास प्रतिभा राय के 1985—93 के बीच आदिवासी समाज के मध्य गुजरे प्रवास का सजीव दस्तावेज है, जिसका मूल्यांकन करते हुए रोहिणी अग्रवाल ने लिखा है "विकास की लहर के साथ बड़े पहाड़ पर पहुँचे डबू (रूपए) के प्रति उनके मन में लोभ पनपा है और साथ—ही साथ बात—बात पर हाथ फैलाकर मांगने की निर्लज्जता भी।"<sup>9</sup>

नव—औपनिवेशिकता ने आदिवासी समाज के मंथन और आत्म विकास के मूल्यों पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा है। आदिवासी को अपनी माटी के कुल्हड़ से अंसतोष है और चिकने सुडौल प्यालों की चाह है। 'महाश्वेता देवी' के बांग्ला उपन्यास 'अग्निगर्भ' में संथालों की शिकायत तीखे स्वर में दर्ज है— "तुम लोग पियाला में चाह पीते मैं मिट्टी के कुल्हड़ में।"<sup>10</sup> यह बदलती स्थितियों और बनती नयी प्राथमिकताओं का आदिवासी मनोशास्त्र है। अमेरिकी वर्चस्ववादी, औपनिवेशिकता के इस नये मायाजाल ने आदिवासियों में नयी प्राथमिकताओं को यहाँ तक गढ़ा है कि वे अपने पुनर्वास को अमेरिकी पुनर्वसित जन जातियों की भाँति ही तौलते हैं, (यद्यपि यह पुनर्वास पहले नृसंशता से उन्हें उजाड़ने और मारने के बाद ही होता है) "बसाई की हालत तथा अमेरिका के आदिवासी अधिवासी नवाजों या दूसरे रेड इंडियनों की तरह होगी? कंजर्व; संरक्षण म्यूजियम; आओं, देखो, संरक्षित बस्तियों में ये मुंडा है, ये संथाल है, ये मरिया है।"<sup>11</sup> पुनर्वास की पीड़ा क्या होती है? और विकास की कीमत यदि रिश्तो की टूटन और विस्थापन हो तो किसे तर्जिह देनी चाहिए, इन प्रश्नों को संवेदनशीलता के



साथ महसूस करने की आवश्यकता है ।

विकास और 'इन्फ्रास्ट्रक्चर' के आवरण में असलियत की लिजलिजाहट से भरा यथार्थ क्या है, इसका नग्न रूपायन आदिवासी उपन्यास करते हैं, क्या यह विकास आदिवासियों के लिये है, या कि देशवासियों के लिए, या कि उन औपनिवेशिक शक्तियों के पक्ष में जो नव-उपनिवेशित राष्ट्र को केवल सैलानी की नियत से ही देखना चाहते हैं और उनके प्राकृतिक अधिकारों को भी पूँजी की जुए में खेलना चाहते हैं। इन सभी पाखंडों को राकेश कुमार सिंह, की लेखनी, पठार के कोहरे के पास जाकर देखती है— "असल में यातायात के लिए ऐसी सड़के निर्मित ही नहीं होती, यदि झारखण्ड की जादुई जमीन के गर्भ में अकूत संपदा और जमीन के ऊपर धन ही धन बिखरा होता— खनिज अयस्क, कोयला और बेशकीमती वनोपज के रूप में।"<sup>12</sup> इसी श्रृंखला में 'श्री प्रकाश मिश्र' का उपन्यास 'रूपतिल्ली की कथा' 20वीं सदी और ब्रिटिश साम्राज्य के परिवेश में मेघालय की खासी जनजाति का समय और समाज व्यक्त करती है। किंतु संस्कृति बनाम नव-औपनिवेशिकता के वाचन के संदर्भ में इसके रूपक स्पष्ट होते हैं। परंपराओं के प्रति खासी समाज के मोह और उनके आपसी संघर्ष वर्तमान साम्प्रदायिक संघर्षों से बचने और भारतीयता के विकास में रमने की दरकार करते हैं। संस्कृति (भारतीयता) का संरक्षण आवश्यक है, क्योंकि संस्कृति और रूढ़ियों में अंतर है जैसे ऐतिहासिकता और पौराणिकता में। इन उपन्यासों में इन सभी के साथ आदिवासी स्त्री के जीवन में बाजारवादी प्रभावों का भी मूल्यांकन होता है। 'रूपतिल्ली की कथा' में स्त्रियों की दोगुनी स्थिति का चित्र 'उन्हे तो जन्म के साथ ही 'दाव और उस्तार' (टोकरी ढोने की रस्सी) के साथ बांध दिया जाता है— श्रम और भूमिकाओं के सुनिश्चित निर्धारण के सच।"<sup>13</sup> इस प्रकार दिखाया जाता है। यह चित्र आदिवासी स्त्रियों के पारंपरिक जीवन का ही नहीं, बल्कि बाजारवाद, भूमण्डलीकरण और नव-औपनिवेशिकता की दस्तक में जी रही उस औरत का भी है जो मात्र श्रमिक की ही भूमिका तक है। श्रम के यह रूप

अलग-अलग स्तरों पर अलग-अलग जरूर है। कुल मिलाकर आदिवासी जीवन के यह तमाम उपन्यास अपने समुदायों की घड़कनों, तड़पनों और दरकनों को पूरी गहराई के साथ परोसते हैं। उन्हीं गहराईयों में नव-औपनिवेशिक ध्वंस की चटखने दिखाई देती है जिनमें 'आदिवासी' पदधारी मनुष्य घिसटने को विवश है।

किन्तु इन सबके बावजूद यह साहित्य अंधेरे के पार रोशनी को देखने का साहस करता है। यह हिम्मत न तो रोमानी है न बचकानी, बल्कि यह समाधान के लिए प्रतिरोध की ऊर्जा और संजीवनी है। 'पाँव तले की दूब', पठार पर कोहरा का ही प्रतीकात्मक संस्करण है।<sup>14</sup> जहाँ आशावाद की सुबह "मैं मर गया तो बाकी पहाड़ मेरे बेटे काटेगें, वे भी मर गए तो बेटों के बेटे। एक न एक दिन पहाड़ खत्म होना ही है"<sup>15</sup> के रूप में होती है।

इस तरह से आदिवासी उपन्यास भ्रष्टाचार की अकुलाहटों का आख्यान हैं जो आदिवासी क्षेत्रों में गैर आदिवासी महाजन भूपति और सभ्य समाज के राजनेता, ब्यूरोक्रेट और पूँजीपति की आपसी साठ-गाँठ पर रोशनी डालते हैं। जो दुनिया की नजरो में उनके बर्बर, असभ्य और हिंसक विशेषीकरण की रूढियों को तोड़ते हैं, जो विकास की आँधी में उनकी छिनती निजता, आजीविका और स्थानिकता का दर्द बयाँ करते हैं, जो कार्पोरेटी रोजगार के बंद दरवाजों पर दस्तक देते हुए उनकी साकलें खटखटाते हैं। वस्तुतः उनकी केन्द्रीय संवेदना आदिवासी के संरक्षण में मनुष्यता का बचाव है, और उसके विनाश में खड़ी हर शक्ति का प्रतिरोध है, फिर चाहे वह नव-स्वदेशवादी हो या फिर नव-उपनिवेशवादी.....!

**संदर्भ —**

1. राजेन्द्र यादव के विश्लेषण ये यह तथ्य उभरता है — " भारतीय मानस की ये सारी विसंगतियाँ और अंतर्विरोध चंद्रकांत में भी है— काफ़ी संश्लिष्ट और उलझे हुए। एक ओर तो प्रतिरोध की इसी जटिल, सूक्ष्म और द्वंद्वात्मक अमूर्त प्रक्रिया ने तिलिस्म को जन्म दिया तो दूसरी ओर ऐयारी में विरोध ओर स्वीकार का दुहरा रूप भी

- उभरने लगा।” (राजेन्द्र यादव ‘दयनीय महानता की दिलचस्प दास्तान: चंद्रकांता’, शीर्षक लेख, आलोचना, अप्रैल-जून 1980, पृ0 95)
2. मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में – “.... विभाजन की की पूरी भयावहता उसकी जटिलता और समग्रता को हिंदी के अनेक उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण दम से अभिव्यक्त किया है.... मुझे ऐसा लगता है कि यह कवियों और कथाकारों की मानसिकता से अधिक कविता और कथा साहित्य के स्वभाव की भिन्नता से जुड़ी सच्चाई है।” (मैनेजर पाण्डेय, उपन्यास और यथार्थ: एक टिप्पणी हंस, जनवरी 1999, पृ0 15)
  3. मैनेजर पाण्डेय: ‘उपन्यास का समाजशास्त्र’ शीर्षक अध्याय, अध्ययन, अनभैसांचा पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 2002, पृ0 48.
  4. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन: एक उभरती चेतना, शीर्षक अध्याय, आदिवासी साहित्य विमर्श (पुस्तक), संपादक: गंगा सहाय मीणा, प्रकाशन: अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्री ब्यूटर्स (प्रा0 लिमिटेड, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली (पृ0 37)
  5. अभय कुमार दुबे, साकार राष्ट्र निराकार यात्रा, पुस्तक भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी प्रकाशन दिल्ली (पृ0 23,24)
  6. प्रणय कृष्ण; ‘नव – उपनिवेशवाद और भूमण्डलीकरण का विरोध, ‘शीर्षक, ‘उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत; अध्याय, पुस्तक: उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिंदी साहित्य, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से (पृ0 58).
  7. रणेन्द्र, ग्लोबल गांव के देवता, (पृष्ठ 92)
  8. रणेन्द्र : ग्लोबल गांव के देवता (पृ0 83)
  9. आदिवासी साहित्यविमर्श (पृ0 74)
  10. अग्निगर्भ (पृ0 34)

11. अग्निगर्भ (पृ० 124)
12. पठार पर कोहरा, (पृ० 87)
13. रूपतिल्ली की कथा (पृ० 38)
14. रोहिणी अग्रवाल, शीर्षक, समकालीन हिंदी उपन्यास और दिक् समाज का आदिवासी चिंतन, पुस्तक आदिवासी साहित्य विमर्श, संपादक: गंगा सहाय मीणा "पठार पर कोहरा (द्वितीय संस्करण 2005) और पाँव तले की दूब (प्रथम संस्करण 2005) – बस, दोनों जगहों, पात्रों और लोकल के नाम बदले भर हैं। तब नये टी०पी०सी, डोकरी के जनरल मैनेजर सुदीप्त/सुदामा प्रसाद का चोला पहन लेते हैं, अध्यापक संजीव गजली ठारी बन जाता है, मेझिया गाँव।"
15. पाँव तले की दूब, (पृ० 80)

## PREMCHAND'S KARMABHOOMI: A POLEMICAL DELINEATION OF INDIAN NATIONALISM AND WOMEN

\* *Dr. Arti Dixit*

According to the Oxford English Dictionary, the word “Nationalism” means the desire by a group of people who share the same race, culture, language, etc. to form an independent country. In its more general sense, it's a feeling of love for and pride in our country; a feeling that our country is better than any other. The age of Premchand extends from 1880 to 1936. It was this phase of transition in Indian politics and movements for independence that had fired the imagination of Indian writers. In the first half of the twentieth century the Congress Party had become a major political party under the leadership of Mahatma Gandhi. Premchand always kept in touch with the contemporary national parties and the freedom struggle. The mutiny of 1857 had shaken the sensibility of Indian people, and “thinkers now rose from the slumber of idealism” (Sharma, 2003:3). It paved the way for modernism in Indian social and literary life. Ram Krishna Mukherjee, a famous sociologist, says that modernization is “not universalistic, non-ideological, transethnic and pan-humanistic, it is variable” (1975:101).

India emerged into the light of modernism. There was a vallation between the medieval and the modern. The all round development in India provided new perspectives to Indian ethos. But in rural India, there were still many problems like untouchability, rigid caste system, communal feelings and orthodox way of life. As a realist and a progressive writer, Premchand has portrayed different shades of Indian life and the problems of Indian peasantry. Premchand is opposed to the mere imitation of the ways of alien cultures. He is deeply attached to the Indian people. He can indeed be called the first literary exponent of Indian peasantry in Indian literature. He is fully aware of the dangers of colonialism and industrial growth.

Premchand's Karmabhoomi makes an enduring impact on the

---

\* Govt. Teacher (Primary) Basic Education Department

reader's mind in its delineation of the nationalist movement. A. D. Smith, a renowned historian, says, "Nationalism is really only anti-colonialism" (qtd. in Grover & Grover, 2004:292). But it would be more correct to say that "Indian nationalism was partly the product of a world-wide upsurge of the concepts of nationalism and right of self-determination initiated by the French Revolution, partly the result of Indian Renaissance, partly the offshoot of modernization initiated by British in India and partly developed as a strong reaction to British imperial policies in India" (Grover & Grover, 2004:292-93).

This paper is an attempt to examine the themes of violence, non-violence, commercialized education, corruption, the image of women, the struggle against the bureaucracy, against caste and community oppression and against the exploitation of the peasants by the zamindar in the light of Indian Nationalism. The development of a powerful nationalist movement and of a consistent nationalist critique of colonialism is clearly reflected in the writings of Premchand. Rabindranath Tagore also portrays a new vision of Indian Nationalism in his novels Gora and The Home and the World. Gora has contemporary relevance because of its theme of the concept of nationalism in a multi-racial and multi-religious community like India. It exemplifies Tagore's vision of a new, syncretistic India, rising above the considerations of caste, community and race. The novel also can be read as a historical document that brings before us how the British imperialists dominated the Indians by their callous, exploitative, tyrannical strategies of nation-ruling. As Edward Said says in his article, "Culture *and Imperialism*", "Domination and inequalities of power and wealth are perennial facts of human society. But in today's global setting they are also interpretable as having something to do with imperialism" (2002: 369). The Home and the World, as indicated above, operates as a fictional assessment of the Swadeshi Movement in Bengal. Tagore depicts here how unscrupulous politicians, by their artful talk on patriotism, mislead the people to satisfy their greed and lust. He considers this as a form of social tyranny. He says in his book Nationalism that our real problem in India is not political. It is social.

During the decade before Karmabhoomi's publication,

Premchand had been very much influenced by Mahatma Gandhi's satyagraha movement, and his writings, stories, and essays clearly reflected his sympathies with India's poor and the fight for India's freedom. India of the early 1900s consisted of a great mass of poor and illiterate people who were exploited by some privileged people. Peasants in the villages were cheated by moneylenders and landlords and the poor of all castes in the cities were exploited by the rich and powerful. The untouchable classes were treated "as pariahs by their own upper-caste Hindu brethren" (ix). I. N. Madan says:

In addition to these specimens of the feudal world, there is another variety of landlords who exploit the masses in the name of religion. . . . The custodians of religion exploit the ignorance of the poor people. They themselves loll in luxuries, while their 'subjects' sweat for them in the hope that they would be allowed to enter heaven (1946:73-4).

Like Mahant Ramdas in Sevasadan, Mahant Asharam Giri, in Karmabhoomi, is a typical representative of this group. Shri Thakurji is the presiding deity whom he worships in the temple owned by him. In a period of economic depression too, he issues every decree through the mouth of this God and takes a huge amount of tax from his tenants. The poor and ignorant people have no other course but to obey implicitly the divine commands otherwise the heavenly wrath will visit on them. Bholu Chaudhary who was one of the worst victims of this depression and "his cruelty died of his ruthless treatment" (Madan, 1946:74).

Lalit Srivastava, in the Introduction to the novel, writes:

By the beginning of the twentieth century, the two religions, Islam and Hinduism, had coexisted in India for more than a thousand years (viii).

These two communities, except some sort of violence, lived together in harmony. They not only tolerated each other but there were numerous instances of friendship such as that between Amarkant, the Hindu character of Karmabhoomi, and Salim, the Muslim character and strong social bonds, excluding marriage, between the two communities. I. N. Madan gives a very emphatic view about this. He

says, “Premchand does not bring about Amarkant and Sakina's marriage for two reasons: a marriage between persons of different faiths is anti-social and they are so deeply engrossed in social work that their love is sublimated into a higher ideal of life” (1946:94).

Karmabhoomi was published in 1932. The title is highly suggestive and indicates that the novel is action-oriented. The main protagonists too dedicate themselves to a life of action. The story begins in the city, moves on to the country-side, and is then resumed in such a way that the rural and the urban environments become equally important. The atmosphere of struggle is maintained throughout – the struggle against the bureaucracy, against caste oppression and against the exploitation of the peasants by the zamindar. Mahatma Gandhi changed the course of Premchand's life, affecting his thought and vision, as no one else did before. And this is clearly manifested in his writings in the twenties, most conspicuous of them being Rangbhumi (1925). A critic, Jagdamda Prasad Dixit, enumerates some of the issues that engaged Premchand throughout his life: the miseries of the people, peaceful protests against injustice, 'a change of heart' in the exploiters, idealist characters giving away their land to the tilling farmers. Premshankar, of Premashram (1921), originally converted to revolutionary ideology escaped to the USA, eventually returned home as a satyagrahi. This transformation of role, however, continued to be a feature of the Indian political novel in general. The peasants of Lakhanpur in Premashram change their path from violence to non-violence and Premshankar declares that 'the land belongs to tiller'. The most significant character showing the Gandhian impact is of course the blind beggar Surdas in Rangbhumi. He is “an ideal Satyagrahi”, points out Amrit Rai :

not merely in the limited political sense but in the wider context of all the aspects of life . . . the simple, meek, fearless truth-loving Surdas can be identified in his quotidian aspect with Premchand, and in his sublimer aspect with Gandhi. For it was as a sublime manifestation of all his own virtues that Premchand had ever regarded and idolized Gandhi, and it is not



unlikely that he might have had him in mind while delineating the character of Surdas (2002:197-198).

Karmabhoomi shows the rivalry of two leaders of peasants, Amarkant and Atmananda. The former takes a moderate and the latter an extremist position on the peasant's struggle. In view of Premchand's practice of drawing his main characters from real life, it seems reasonable to speculate that these two protagonists "represented the Congress and the Kisan Sabha positions respectively" (Pandey, 1989:175). Atmananda, the fictional representation of a radical sadhu-turned-peasant leader, had eventually to accept the dominance of Amarkant, suggests "a literary replication of the actual dominance of the Congress over the Kisan Sabhas" (Pandey, 1989:175). In fact, Premchand made Amarkant the more cunning and selfish of the two leaders, concerned primarily for his name and fame. Yet the final withdrawal of the movement in accordance with Amarkant's way of thinking is described in terms that distinctly suggest approval. It is true that Premchand approved of Mahatma Gandhi's withdrawal of Civil Disobedience as well. He [Premchand], in a different tone, reveals himself here. As it is he idealized Amar's struggle. Ranajit Guha opines, "There is another dimension to this question as well. If, as much recent research has suggested, there was considerable evidence of independent initiatives and independent struggles on the part of the peasantry in the nineteen twenties and thirties, in eastern Uttar Pradesh as elsewhere, it is significant that a sensitive writer like Premchand took as little note of this as did most of the Congress leaders" (1:220).

The novel, as the title signifies, deals with life's inaction. The characters breathe and grow in action. Amarkant and Salim, the two chamberfellows, gradually become more and more involved in the national movement. They begin to spin, give up using mill-made cloth, and often go to the village for constructive work. They are encouraged in their work by one of their teachers, Shanti Kumar. Unlike other teachers, Shanti Kumar attaches little importance to academic learning. He is convinced that the prevalent system of education has become completely commercialized. He wants his students to think independently and expose themselves to the new social and political

forces that were sweeping across the country. Amarkant's young half-sister Naina, sometimes goes with him to attend lectures of Congress leaders. Amarkant becomes convinced that foreign domination is a curse for India. It has destroyed the sense of self-respect of the Indian people. There is a small incident in Karmabhoomi that constitutes one of the most damaging exposures of the educated middle classes' concern for the oppressed, to be found in Premchand's fiction. The incident involves a band of European soldiers who rape Munni, an Indian woman. Obviously intended as a specimen of the kind of incidents common throughout British rule which made Indians increasingly conscious of European racialism, Premchand's depiction also adds to this a few strokes in which the guilty soldiers are beaten for their action. Amarkant and his friends teach this 'lesson' to the soldiers but thereafter their conscience is satisfied as if they have avenged the wrong. Not once do they care to enquire as to what happened to the helpless victim of this rape. It is left to Amarkant's wife Sukhada to chide them:

Why don't you people go and find out some day, or do you think that giving speeches frees you of any obligation? (27).

This incident occurs fairly early in the narrative. Premchand has portrayed very deftly the duality of the nationalist protagonist's personality. On the one hand, Amarkant is inspired by his concern for the suffering poor to move away from the comforts of his family to court the hardships of the countryside; yet on the other hand, his behaviour continues, almost till the end, to be governed by the anxiety to maintain his leadership.

The major theme of the novel thus deals with the Civil Disobedience movement of 1930-32 in a disguised form. Amarkant and Sukhada are the national leaders of the movement. Premchand who has always reflected the different phases of the national struggle in his previous novels does not ignore the economic depression of 1929 which adversely affected the lot of Indian peasantry. It leads to mass struggle all over the country for affording economic relief to tillers of the soil. It is in the light and experience of this social and political

upsurge that the theme of the novel has been conceived and executed with remarkable realism and power. It is a deeply moving study of the peasant's poverty and courage. It is also a vivid picture of the terrible scene of repression and destruction of life and property in the villages. Premchand repeats his favourite theme by revealing how Western Civilization enters on the stage to disrupt the social and economic life of a village, how the peasants are thrown into a state of confusion and how they can again mobilize their strength for building a new home in a new village for themselves.

Premchand's treatment of the caste and the suffering of the untouchable are intimately connected with his relationship with Mahatma Gandhi on the one hand and his own experience of the Indian village reality on the other. *Karmabhoomi* presents the problem of the untouchable with a remarkable sense of realism. Amarkant's first reaction to the pitiable condition of the Harijan village is that "of a shock and fear without the slightest traces of hollow idealism and sickening romanticism. A sense of fright rudely awakes the romantic young man to the realisation that the greatest stumbling block for the educated upper caste in its understanding of the untouchables is the lack of actual experience of the rural society" (Das, 1991:318). Amarkant is fascinated by the simplicity, generosity, affection, and contentment of the villagers. To see these simple guileless people being subjected to daily persecution makes him sad. His views are similar to Mahatma Gandhi. Thus, he delivers the message of Gandhiji to the villagers in *Karmabhoomi*. He says:

I don't believe in the caste system, Mataji. A Chamaar is worthy of respect if he is honest; whereas a Brahman, if he is deceitful, false, and licentious, is not worthy of respect (122).

Premchand realises that compassion and sympathy are not enough, and individual protests are too feeble to demolish the fortress of tradition. Organized protests with a clear political and social agenda are the only weapons to fight against the caste and rural poverty. He was the first to analyse the causes of the economic privations of the Harijans and their social indignities. The slow change in Amarkant brought by

this actual experience of the Harijan life leads him towards political action. Once Amarkant saw several low caste people being beaten up by the Brahmins because they dared to attend a religious meeting where passages from the scriptures were being recited. According to the Brahmins, the 'untouchables' have no right to hear Vedic hymns. When report of this incident reaches the city, Sukhada also joins the struggle which is being waged under Amarkant's leadership. The Satyagraha is successful. Brahmins have to yield. Harijans are now free to attend religious meetings and to offer prayers inside the temple.

Sukhada, a new woman, is the first among Premchand's female characters who takes up the leadership of a mass movement. She is joined by the old Pathan woman and her grand-daughter Sakina. At first, we see a deep contrast between Sukhada and Sakina. The former is shallow, smug, and proud of her wealth; the latter is thoughtful, gentle and patient. Premchand gives a clear description of both the women. He says:

Sakina's wisdom, reasoning, perception, and fearlessness had astonished him [Amar] and captivated him. The more he knew Sakina, the deeper her influence became. Sukhada dominated him with her brilliance and passion, a domination that he chafed against. Sakina dominated him with her softness and grace, a domination that he liked. Sukhada had the pride of possession. Sakina had the humility of surrender. Sukhada thought herself wiser and abler than her husband. Sakina thought herself nothing in comparison to Amar (95).

But in the course of events Sukhada is transformed. She sheds many of her limitations and comes forward to lead the struggle. While Harijans are asserting their rights in the village, the workers in the city wage their struggle on the issue of the housing colony. Sukhada supports the workers' movement actively and after a while comes to be regarded as one of their leaders. The only member of the family, who opposes the workers, is Naina's husband. This opposition culminates in Naina's tragic death in a violent encounter with her own husband. The

Municipal Board finally yields. The land which the workers are demanding is handed over to them for their quarters.

Sarala Jag Mohan, a Gujarati critic, says:

The Indian novels of the twenties and early thirties had feminine characters, who stood side by side with their male counterparts in the freedom struggle, faced lathi blows and went to jails, with babes in arms. They also picketed the liquor shops and boycotted foreign goods and participated in movements aimed at helping women come out of their social disabilities and stand on their own feet (Mohan, in Bhat, 1993:45).

Premchand's novels are filled with such women characters, whose mental horizons have widened, but are still firmly rooted to homeliness. Generally speaking, this is the image of the woman in the Indian fiction of this time, whether written by men or woman. It is the woman seeking wider field for herself, retaining at the same time her traditionally ascribed role and giving a high premium to feminine virtues, and looking beyond the home at the same time.

Premchand says that women are in no way behind their male counterparts. Sukhada and Naina are its beautiful examples. Sukhada questions the ideals of her husband initially but in the course of time she leaves the house with him. She, however, returns home to serve her ailing father-in-law, and then participates in the movement. Her view about women is that they have never been behind men either in suffering or in protecting principles. She is clear in her views about man's attitude towards woman. While Amar thinks that she loves ornaments but Sukhada before leaving her in-law's house with him, gives up all ornaments.

Premchand is not a feminist but he is clear in his perception that without women's participation no society can ever progress. Even Shantikumar acknowledges the fact that within a year Sukhada had done so much that if Amarkant returns, he would find no space for him because what she had done was unimaginable.

The Gandhian whirlwind and the Freedom Movement catapulted Indian women into the forefront. A. R. Desai says, "This was

unique in the history of India, the spectacle of hundreds of women taking part in political mass movement, picketing of liquor shops, marching in demonstration, courting jails, facing lathi charges and bullets” (1976:279). Women came to the front and the four walls of the home widened and broadened into the boundaries of the country. Literature written at the time of the Freedom Movement projects a new image of the Indian woman. The work of Raja Rao and Mulk Raj Anand could not have been possible without it. Mahatma Gandhi's autobiography and Pandit Nehru's writings give short sketches of brave women fighters. The influence of Gandhian philosophy gave rise to a new humanism and a new morality based on human values rather than religious orthodoxy. The trend was towards a positive, brave and outspoken effort to find out a new way of life for women.

Premchand exposes a gross inequality of life of the prison in Karmabhoomi and highlights the forces of exploitation. According to him, at last human goodness and truth always win. The independence movement in India was not merely a political struggle, but an all-pervasive emotional experience for all Indians in the 1920s and 30s. No Indian writer, writing in those decades or writing about them, could avoid reflecting this upsurge in his work so as Premchand did. However, the greatest strength of his novel Karmabhoomi lies in its capturing the mood of this period and its authentic depiction of the ethos of an era of Indian History. Ever since it was written, Karmabhoomi has been acknowledged as the most remarkable specimen of Premchand's unique creative genius.

**Works Cited:**

1. Das, Sisir Kumar. A History of Indian Literature-Vol. VIII. 1800-1910 Western Impact : Indian Response. New Delhi: Sahitya Akademi, 1991.
2. Dixit, Jagdamba Prasad. “Premchand and Gandhism”, Premchand, ed. by Shiv Kumar Misra, National, Delhi, 1986, p. 132.
3. Grover, B.L. and S. Grover. A New Look at Modern Indian History: From 1707 to the Modern Times. New Delhi : S. Chand and Company Ltd., 2004.

4. Guha, Ranajit. Ed. Subaltern Studies. Vol. I. New Delhi: Oxford University Press, 1981.
5. Madan, Indar Nath. Premchand: An Interpretation. Lahore: Minerva Book Shop, 1946.
6. Mohan, Sarala Jag. "The Image of Indian Woman in Gujarati Fiction". The Image of Woman in Indian Literature. Ed. Yashoda Bhat and Yamuna Raja Rao. New Delhi: B. R. Publishing Corporation, 1993. 43-48.
7. Mukherjee, Ram Krishna. "History and Tradition in Indian Society: Null and Alternative Hypothesis?" (A Review Article. Reviewing Yogendra Singh's Modernization of Indian Tradition. Delhi: Thompson Press, 1973) in The Sociological Bulletin. 24.1 (March 1975): 95-108.
8. Pandey, Geetanjali. **Between Two Worlds : An Intellectual Biography of Premchand**. New Delhi: Manohar Publications, 1989.
9. Premchand, Munshi. **Karmabhumi**, trans. from Hindi by Lalit Srivastava. New Delhi: Oxford University Press, 2006.
10. Rai, Amrit. Premchand: His Life and Times. Trans. Harish Trivedi and with an Introduction by Alok Rai. New Delhi: Oxford University Press, 2002.
11. Said, Edward. "Two Visions in **Heart of Darkness**". From **Culture and Imperialism. Modern Literary Theory : A Reader**. Eds. Philip Rice and Patricia Waugh. London: Arnold, 2002 (1989), pp. 369-380.
12. Sharma, I. D. Premchand's Godan: A Critical Analysis. Bareilly: Prakash Book Depot, 1995.
13. Tagore, Rabindranath. Gora. Trans. from Bangla. Sujit Mukherjee. Introduction by Meenakshi Mukherjee. New Delhi: Sahitya Akademi, 1997.
14. Tagore, Rabindranath. The Home and the World. New Delhi: Rupa & Co., 2006.

## “छोड़ के प्रेम को कह दो कोई अफ़साना लिखे”

\* डॉ० संध्या सिंह

इस शीर्षक में बहस का मुद्दा बनने की पूरी क्षमता है। पर बात यहाँ शमशेर की हो रही है, शमशेर की कविता की हो रही है। कविता क्या है? कहाँ जन्म लेती है? कहाँ बसती है? आखिर कविता की ज़रूरत क्या है? और क्यों है? वह मरती क्यों नहीं? मृत्यु की घोषणा के बाद भी क्यों कफ़न से निकल चुपचाप आ खड़ी होती है?..... इन प्रश्नों के उत्तर शमशेर की कविताएं देती हैं, कविताओं के मध्य का मौन देता है और शमशेर की कविता की रूमानीयत के समानान्तर चलता बेआवाज़ बेधता दर्द देता है।

कविता अगर शास्त्र नहीं, संवेगों की अभिव्यक्ति है तो जाहिर है, हर एक के संवेग उसकी निजी सम्पदा हैं। यह निजत्व किस बिन्दु पर अपना विलय करता है, कि उसकी निजता सारगर्भित होकर मानवीय करुणा से एकाकार हो जाती है। यही बिन्दु वह प्रस्थान बिन्दु बनता है जो अधकचरी स्वप्न—जीविता, सतही भावुकता, वायवीय कल्पनाशीलता और रूमानी एकालाप को एक वृहत्तर फलक प्रदान कर उसे आत्मान्वेषण के मार्ग से उपलब्धि के लक्ष्य की तरफ बढ़ाता है — जो मन से मानव और मानव से मानवता में पर्यवसित होता है।

ऐसा होता है, पर यह कोई अवश्यम्भावी फार्मूला नहीं है। शमशेर के साथ तो बिल्कुल नहीं है। वह किसी भी पैटर्न में फिट नहीं बैठते। उनके शब्द मौन हो जाते हैं और उनका मौन बहुत कुछ कहता है बात दोनों को मिलाकर बनती है — कहा — अनकहा।

1980 में प्रकाशित “उदिता” में शमशेर कहते हैं — “उस ज़माने में (1941 से 47 के बीच) मैंने अपनी घोर वैयक्तिक अतार्किक भावुकता, रोमानी आदर्शवाद आदि से रचनात्मक संघर्ष शुरू कर दिया था और मार्क्सवादी मॉडल प्रबल रूप से मुझे अपनी ओर खींच रहे थे पर मेरी असली ज़मीन तो रोमानी ही थी, रोमानी ही बनी रही”<sup>1</sup>

\* विभागाध्यक्ष, हिन्दी, डी०ए०वी०पी०जी० कॉलेज, लखनऊ।



कैसे हुआ यह ! जो जीवन शमशेर ने जिया और जिस युग में उनकी कविता जन्मी – बढ़ी, वह प्रेम से अनासक्ति का युग था, प्रगतिशीलता और नई कविता का युग था। मोहभंग और विद्रोह का युग था, शोषण की यातना का युग था, पीड़ा और वेदना का युग था। फिर कैसे हुआ यह!

पर क्या शमशेर की रुमानियत का अंतस्तत्व वेदना नहीं है? क्या प्रेम – वेदना – पीड़ा की यात्रा करुणा तक नहीं जाती ? क्या करुणा का मूलस्वभाव और प्रगतिशीलता का मूल भाव दोनों मानव को, जीव मात्र को केन्द्र में रखकर नहीं चलते!

आलोचक और पाठक तो सतह पर दिखते इस अन्तर्विरोध की भूलभुलैया में उलझते ही रहे हैं पर निःसन्देह शमशेर के पास वह संजीवनी बूटी रही है जो विपरीत धर्मी समय में भी प्रेम के अंखुए को जीवित रख सकी। यह प्रेम किसके लिये जाहिर है, साहित्य-कविता के केन्द्र में अवस्थित मानव के लिये। इस मानव से क्या प्रेम को पृथक किया जा सकता है! मानव का अस्तित्व क्या सिर्फ एक दैहिक संयोग की परिघटना है। एक स्त्री और एक पुरुष का परस्पर आकर्षण और प्रेम क्या सिर्फ जैविक क्रिया – प्रतिक्रिया, कार्य-कारण से परिभाषित हो जाता है?

सम्पूर्ण वाङ्मय, विशेष रूप से रस का साहित्य अपने अपने तरीके से सदियों से इस प्रश्न से जूझ रहा है। आज क्लोनिंग और सैरोगेसी के युग तक पहुँच कर भी हम क्या वहीं नहीं खड़े हैं, जहाँ से चले थे।

शमशेर के लिये प्रेम ही सत्य है, बाकी सब मिथ्या –

“तुमको पाना है अविराम

सब मिथ्याओं में

ओ मेरी सत्य!”<sup>2</sup>

प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं – “समय और जीवनानुभव जिस बिन्दु पर मिले थे उनसे कहीं हटकर था उनके भीतरी भूकम्प का केन्द्र। वे वहीं से परिचालित थे, जहाँ से अमृत ही नहीं विष भी निकलता है। प्रेम सागर के

मंथन से जो ज़हर निकलता है, वह शमशेर ने जिया भी है और पिया भी है। यही वह पीड़ा है जो उनके काव्य में अपार करुणा में बदली है। तमाम विषमय को भोगते हुए उसके विरुद्ध आंतरिक गहन विद्रोह के रूप में।<sup>3</sup>

“रोमानियत एक आवेगात्मक अनुभूति है। शमशेर में आवेग का यह प्रेरक और उत्साहपूर्ण रूप देखें, जहाँ कवि धनीभूत पीड़ा के आवरण चीर कर ज्योति के निःशंक आकाश में उतर कर मोह, प्रेम और भय के कुअंकों को मिटा देने का आह्वान करता है :

**“खोल, उठा ज्योति के मयंक  
अंक मिटा भाल के, निशंक!  
मोह सत्य भौंह बंक  
लौह सत्य प्रेम पंक**

..... अन्यथा व्यथा, व्यथा, वृथा.....

है अनादि: आदि रंक – शून्य अंक

तोल उठा वृक्ष के अशंक भाव

की अथाहता”

(—धनीभूत पीड़ा / एक सिम्फनी / कुछ कविताएं)<sup>4</sup>

यहाँ शमशेर की संवेदना का धरातल, उनकी आन्तरिक रागात्मकता की रौशनी में उनकी रुमानियत को, रुमानियत की सामान्यीकृत अवधारणा से अलग पहचानना होगा। शमशेर ने व्यक्तिगत परिस्थितियों के सत्य को युग—सत्य पर कभी भी आरोपित नहीं किया। इसीलिये वह एक साथ सामाजिक यथार्थ को भी साध पाए और अन्तर्विषयी भी रह पाए। उनके उद्वेग की अनुभूत गहराई, उनकी निराली संप्रेषण क्षमता उन्हें वहाँ ला खड़ा करती है जहाँ पाठक के साथ आलोचक भी पुनर्पाठ की आवश्यकता स्वीकारता है।

उनकी अनायास, अयत्नज रुमानियत, मोहभंग के लम्बे खिंचते चले जा रहे युग के बीच सार्थक मोह की, प्रेम की पुनर्चना करने की तरफ कदम बढ़ाती है। वह इमीटेट नहीं करती, रीक्रिएट करती है।

“धरो शिर  
हृदय पर  
वक्ष वहिन से , – तुम्हें  
मैं सुहाग दूँ  
चिर सुहाग दूँ।  
प्रेम – अग्नि से – तुम्हें  
मैं सुहाग दूँ!  
विरह—आग से —तुम्हें  
मैं सुहाग दूँ।”

(गीत/कुछ और कवितायें)5

विरह – आग से चिर सुहाग देने वाला यह गीत, सृष्टि के अनादि संगीत का देहान्तरण ही तो है। नाद के साथ अर्थ में पर्यवसान पाने की यात्रा उसे जिन आहत सार—ध्वनियों से जोड़ती है वही तो शमशेर का सत्य है क्योंकि उनके लिए न जगत मिथ्या है न मानव। शमशेर को बहुत जानने वाले और शमशेर को थोड़ा—सा पढ़ने वाले, दोनों उनके एक साथ व्यक्ति—मन और जन—मन निबाहने की अयत्नज क्षमता के कायल है। शमशेर स्वतंत्र हैं मोह को भुगतते हुए भी मोह से और मोह भंग की पीड़ा झेलते हुए भी पीड़ा से, क्योंकि वह अपनी निजी पीड़ा को मनुष्यता के दर्द में रूपान्तरित करने की राह पर बढ़ चुके हैं।

मुक्तिबोध को “उस भवन में जाने से डर लगता है जिसे शमशेर की आत्मा ने अपनी अभिव्यक्ति के प्रभाव से अपने हाथों तैयार किया है। – उसकी गम्भीर प्रयत्नसाध्य पवित्रता के कारण”<sup>6</sup>

क्या यह पवित्रता प्रयत्नसाध्य है? चुनौती दरअसल यही है इस रूमानी कवि के मूल्यांकन की।

शमशेर की रूमानियत की जड़ें कहाँ हैं? उनके जीवन में? वहाँ तो सिर्फ पीड़ा है, राग का उल्लास नहीं। पर उनका राग एकांतिक नहीं।

“जब प्रेम और मर्सिया को धिक्कारा जाता था, उन्होंने प्रेम और

मर्सिये डूब कर लिखे—बेधड़क, क्योंकि वे पहचानते थे कविता का मुक्त और बहुआयामी स्वभाव वे वाद—विवाद में न पड़कर शुद्ध मानवीय कविता लिख रहे थे — युगबोध की, मनुष्य बोध की, आत्म बोध की ।

..... जहाँ उन्हें आत्मा का ताल—मेल लगा है, उन्होंने गीत और छंदोबद्ध कविताएं भी लिखी हैं। जबकि उस युग में छंद तोड़े जा रहे थे, गद्य की लय पर बहसें हो रही थीं लेकिन इसकी परवाह न करते हुए शमशेर ने “निदिद्या सताये मोहे संझही से सजनी” जैसे गीत, सॉनेट, गज़ल, छंदबद्ध कविता, रूबाई आदि सब लिखे”

शमशेर दुरुह भी हैं और सरल भी दुरुह इसलिए कि वह अपनी री में लिखते हैं “जिस विषय पर जिस ढंग से लिखना मुझे रुचा, मन जिस रूप में भी रमा, भावनाओं ने उसे अपना लिया”<sup>8</sup> और सरल इसलिए कि वह किसी भी वाद या शास्त्र से परे खड़े होकर लिख रहे हैं। निस्पृह ——— समभाव से ——— विचार और अनुभूति दोनों के वाहक — वहाँ रूमानी कुहेलिका है तो अवसाद का अवगुन्ठन भी है। स्वप्नदर्शी अन्वेषण है तो मोहाविष्ट अन्तराल भी है।

यह रूमानियत, यह दर्द, यह सामाजिक सरोकार, यह मार्क्सवाद, यह गाँधीवाद, यह प्रगतिशील चेतना, यह प्रयोगधर्मिता, यह अनूठा शिल्प, आग और पानी साथ—साथ साधना, और सब अपनी शर्तों पर, नितान्त स्वान्तः सुखाय पर आत्ममुग्धता, आत्मदया, अश्रुविगलित मसीहाई प्रलाप से कोसों दूर।

जैसा जीवन शमशेर ने जिया, ठोस कठोर, निरपेक्ष यथार्थ का, सर्वहारा का (तकरीबन) उसके बावजूद उनकी अन्तर्मुखी चेतना, उनकी स्वप्नदर्शिता को निरन्तर अन्वेषण मुखी बनाती रही, उनकी व्यक्तिगत वेदना का फैलाव सम्पूर्ण सृष्टि में हुआ, करुणा रूप में ।

1980 में लिखी ‘उदिता’ की भूमिका में स्वयं उनका कहना है —

“प्रेम की भावुकता ने जो बीज बोया है, वह मैं देखता हूँ कि अकारथ नहीं गया, क्योंकि पूरी मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफरत और शान्ति की

समस्याओं से दिलचरपी — ये सभी बातें उसी से धीरे—धीरे मेरे अन्दर पैदा हुईं।<sup>9</sup>

शमशेर बुद्ध के निकट हैं। उनकी वेदना का पर्यवसान अध्यात्म के आत्म यानि मानव की आत्मोपलब्धि की चेतना में हुआ है। इसी यात्रा का महत्वपूर्ण और अवश्यम्भावी पड़ाव है प्रेम।

इस प्रेम को समझने — देखने की दृष्टि निःसंग होनी चाहिये। बीच में खड़े हो कर सीधी नजर से, वरना पूर्वाग्रहों के अन्तर्विरोध पीछा नहीं छोड़ेंगे।

शमशेर की रूमानी कविताएं मज्झिम निकाय की कवितायें हैं — न बेवजह ढकी छिपी, न बेकारण ध्यान आकर्षित करने के लिये उघड़ीं बहुत ढकी छिपी रूमानी कविताएं भी बाहरी दबाव में लिखी जाती हैं, और बहुत खुली उघड़ी विकृत कविताएं भी किसी न किसी दबाव में ही लिखी जाती हैं। दबाव चाहे व्यक्तिगत मानसिक, परिस्थितिजन्य हो या फिर सायास चर्चा पाने की अदम्य तृष्णा का हो। आज की विजुअल भाषा का प्रयोग करें तो टी0 आर0 पी0 बढ़ाने का दबाव भी कविताओं के नैसर्गिक प्रेम को विकृत जुगुप्सा जगाती अंधेरी गुफा में ढकेल रहा है।

शमशेर की रूमानी कविताएं मध्यम मार्ग की कविताएं हैं। मध्यम मार्ग व्यक्ति का मूल स्वभाव होता है। प्रेम मानव का मूल स्वभाव है। घृणा और क्रोध को उपजने के लिए कारण की आवश्यकता होती है। प्रेम अनायास अयत्नज उभर आता है। और इसके समानान्तर दबे पाँव आता है दर्द।

“संसार में दुखों के अनेक रूप होते हैं, दुख पहुँचाने के भी अनेक रूप होते हैं, मनुष्य को जोड़ने उसके जख्मों पर मरहम लगाने के भी अनेक रूप होते हैं, प्रेम के भी अनेक रूप होते हैं। शमशेर की इस व्यापक यात्रा को गौर से देखें। अपने जीवन के सारे दुख—दर्द को कवि ने मनुष्यता के दुख दर्द में रूपान्तरित कर दिया है, और उसे वृहत्तर मानवीय तथा नैसर्गिक जीवन की गहरी कलात्मक भाषा दी है।”<sup>10</sup>

“जो लोग शमशेर में प्रेम और सौन्दर्य की स्वप्निल दुनिया ही देख पाते हैं, उनके लिये शमशेर का यह शेर नज़्र है :

“मेरी बातें भी तुझे खाबे – जवानी—सी है,  
तेरी आँखों में अभी नींद भरी है शायद।”

(कुछ शेर / कुछ और कविताएं)11

सन्दर्भ —

1. शमशेर बहादुर सिंह—प्रभाकर श्रोत्रिय—पृ—26—साहित्य अकादमी
2. तुमको पाना है अविराम — काल तुझसे होड़ है मेरी — शमशेर बहादुर सिंह — राजकमल प्रकाशन—दिल्ली—1990
3. शमशेर बहादुर सिंह—प्रभाकर श्रोत्रिय—पृ.40—सा0अ0
4. वही—पृ047
5. कुछ और कविताएं—शमशेर—राजकमल प्र0—दिल्ली 1961
6. चालीसोत्तर कविता के हीरक हस्ताक्षर—भवदीय प्रकाशन अयोध्या—पृ0 218
7. शमशेर बहादुर सिंह—प्रभाकर श्रोत्रिय—पृ.72—सा0अ0
8. कुछ और कविताएं—शमशेर—भूमिका—राजकमल—1961
9. उदिता—शमशेर—भूमिका—अभिव्यक्ति का संघर्ष—वाणी प्रकाशन—दिल्ली—1980
10. शमशेर बहादुर सिंह—प्रभाकर श्रोत्रिय—पृ.29—सा0अ0
11. वही—पृ0 43

## स्त्री-विमर्श का सौन्दर्यशास्त्र

\* मनोज कुमार सिंह

सौन्दर्य-शास्त्र हिन्दी में एस्थेटिक्स का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ है। कुछ लोग इसे नन्दनशास्त्र भी कहते हैं। किन्तु सौन्दर्य-शास्त्र के सच्चे स्वरूप और व्ययदेश को अच्छी तरह समझने के लिए एस्थेटिक्स शब्द पर ही विचार करना आवश्यक है।

कहा जाता है कि एस्थेटिक्स शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है। जिसका मूलरूप *atoqntikos* यही ग्रीक शब्द बाद में *Aesthesis* बनकर उपस्थित हुआ, जिसका अर्थ होता है— “ऐन्द्रिय सुख की चेतना” तदनन्तर इस *Aesthesis* से “एस्थेटिक” शब्द बना। पाश्चात्य साहित्य में पहले एस्थेटिक शब्द ही प्रचलित था “एस्थेटिक्स” नहीं। बहुत बाद में इस शब्द का बहुवचन रूप “एस्थेटिक्स” प्रचलित हुआ।

इस अभिधान का अर्थ— विकास क्रमशः इस प्रकार हुआ है—

1. सर्वप्रथम बाउमगार्टेन ने इसका प्रयोग संवेदनशील ऐन्द्रियबोध के शास्त्र के अर्थ में किया।
2. तत्पश्चात्, हीगेल ने इसका प्रयोग ललित कलाओं के दर्शन के अर्थ में किया।
3. तदनन्तर, इसका सामान्य प्रयोग सौन्दर्य के विश्लेषणात्मक निरूपण के अर्थ में होने लगा।

इस प्रकार इसका आशय निकला कि एस्थेटिक्स का शाब्दिक अर्थ है ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम की दृष्टि से किया गया अध्ययन।

किन्तु बाद में “एस्थेटिक्स” उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रियबोध से प्राप्त सौन्दर्य-भवन के मनोमय आनन्द का विश्लेषण करता है।

इस प्रसंग में दो बातें प्रमुख रूप से हैं पहली बात यह कि सौन्दर्य-शास्त्र के अन्तर्गत विचारणीय ऐन्द्रिय बोधों या प्रत्यक्षों में प्रायः

\* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय।

चाक्षुण और श्रावण प्रत्यक्षों की प्रमुखता रहती आयी है ।

दूसरी बात यह है कि सौन्दर्य-शास्त्र के अन्तर्गत प्रमुखतः तीन प्रकार के सौन्दर्य पर विचार किया जाता है—ऐन्द्रिय सौन्दर्य, विधानगत सौन्दर्य और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य ।

यहाँ यह धारणा समीचीन मालूम पड़ती है कि प्रथम अर्थ—विकास के अनुसार एस्थेटिक्स वह शास्त्र है जिसका सम्बन्ध कला और प्रकृति में व्याप्त समग्र 'सुन्दर' और "उदात्त" से है ।

कहा जाता है कि इसी अर्थ में एस्थेटिक्स शब्द का प्रचार जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड, इटली और हालैण्ड में हुआ ।

इस अर्थारोहण के पश्चात "एस्थेटिक्स" का विषय सौन्दर्यानुभूति का सम्पूर्ण क्षेत्र बन गया है ।

पंचयणेश शास्त्री ऐसे लेखक है जिन्होंने सौन्दर्य-शास्त्र का दर्शनशास्त्र का अनुचर बनाकर यह लिख दिया कि सौन्दर्य-शास्त्र रसानुभूति से प्राप्त आनन्द का दार्शनिक विवेचन है दूसरी ओर चार्ल्स मोरो जैसे मनोविज्ञान-प्रेमी फ्रांस, इंग्लैण्ड, इटली और हालैण्ड में हुआ ।

इस अर्थारोहण के पश्चात "एस्थेटिक्स" का विषय सौन्दर्यानुभूति का सम्पूर्ण क्षेत्र बन गया है ।

पंचयणेश शास्त्री ऐसे लेखक हैं जिन्होंने सौन्दर्य-शास्त्र को दर्शनशास्त्र का अनुचर बनाकर यह लिख दिया कि सौन्दर्यशास्त्र रसानुभूति से प्राप्त आनन्द का दार्शनिक विवेचन है दूसरी ओर चार्ल्स मोरो जैसे मनोविज्ञान-प्रेमी विचारक है, जिन्होंने औचित्य की अवहेलना कर सौन्दर्यशास्त्र को मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में स्वीकार किया है ।

सौन्दर्यशास्त्र के व्यदेश-निर्धारण की समर्थ चेष्टा हीगेल ने की है ।

इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "द फिलासफी आव फाइन आर्ट" की भूमिका में सौन्दर्यशास्त्र पर विचार करते हुए यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध सौन्दर्य के सम्पूर्ण क्षेत्र से माना जा सकता है, सही अर्थ में सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्य के साथ है, अन्य माध्यमों से अभिव्यक्त सौन्दर्य के साथ नहीं ।



क्रोंचे ने 'एस्थेटिक्स' को अभिव्यक्ति की पुनः प्रत्यक्षात्मक तथा कल्पनात्मक क्रियाओं का विज्ञान माना है।

आधुनिक युग के भारतीय विचारकों में सौन्दर्यशास्त्र पर काम करने वालों की संख्या बहुत ही नगण्य है। डा० के०सी० पाण्डेय, मर्टेकर, के०एस० रामस्वामी शास्त्री इत्यादि जैसे— वह लेखक हैं, जिन्होंने सौन्दर्यशास्त्र के व्ययदेश और विषय सीमा पर विचार किया है। श्री के०एस० रामस्वामी ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन एस्थेटिक्स' में यह मत बहुत बल के साथ प्रतिपादित किया है कि सौन्दर्यशास्त्र केवल पाश्चात्य देशों में ही विकसित नहीं हुआ है, बल्कि भारतवर्ष में भी इसकी स्पष्ट परम्परा है।

इस परम्परा को ध्यान में रखते हुए इन्होंने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की कुछ अनन्वय किया है जैसे भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में आनन्द और रस की धारणा अथवा अभिनव गुप्ता द्वारा निरूपित काव्य—तत्त्वों के बीच "चासत्व प्रतीत" की धारणा।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत क्षेमेन्द्र के "औचित्य—सिद्धान्त" को विशेष महत्वपूर्ण मान सकते हैं क्योंकि यह औचित्य—सिद्धान्त काव्य की तरह अन्य ललित कलाओं पर भी सामान्य रूप से लागू होता है।

भारतवर्ष के विचारकों का एक वर्ग सौन्दर्यशास्त्र को कान्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र या साहित्य विधा का पर्याय मानता है।

किन्तु ऐसा मानना दूसरे खेमे के विचारकों की दृष्टि में अनुचित है क्योंकि काव्यशास्त्र केवल काव्य का शास्त्र है और उसके अध्ययन की सीमा केवल काव्य तक सीमित है, जबकि सौन्दर्यशास्त्र सभी ललित कलाओं का शास्त्र है और उसकी सीमा काव्य के साथ सभी काव्येत्तर कलाओं, स्थापत्य मूर्ति, चित्र और संगीत तक फैली हुई है। इसलिए सौन्दर्यशास्त्र मात्र काव्यशास्त्र नहीं, बल्कि कलाशास्त्र है।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की प्रारम्भिक सीमा नाट्यशास्त्र है। इस प्रकार भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की विकास—रेखा को निर्दिष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि यहाँ सबसे पहले नाट्यशास्त्र का विकास हुआ, दूसरी दशा में काव्यशास्त्र जिसमें नाट्यशास्त्र भी गतार्थ है, का और अन्त में

इन विकास-दशाओं के समीकरण से सौन्दर्यशास्त्र का अवतरण हुआ। हिन्दी के विचारकों ने सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है— “वस्तु और व्यक्ति के बीच तादात्म्य हो जाना सौन्दर्यशास्त्र कहलाता है।”

सौन्दर्यशास्त्र के विचारको ने सौन्दर्य की परिभाषाएं अनेकों प्रकार से बतलाई है यूनान के विचारकों में मुख्य रूप से सुकरात ने सौन्दर्य के विषय में कहा है— “सुन्दर और शिव एक है, प्रातः सुन्दर जीवन—सापेक्ष है।”

दूसरी तरफ जर्मनी के बाउमगार्तेन ने सौन्दर्य के विषय में कहा है कि— “प्रकृति सौन्दर्य का चरम प्रतिमान है। इसलिए प्रकृति का अनुकरण ही सौन्दर्य—सृजन है।

इंग्लैण्ड के विचारक शैपट्सबरी का मानना है कि — “सौन्दर्य और परम विभु एक है।”

दूसरी तरफ एडिसन का मानना है कि— “सौन्दर्य परिवेश और संगीत का फल है।” रुस के विचारक चर्नाशेव्सकी ने “सौन्दर्य ही जीवन” कहा है।

इस प्रकार सौन्दर्य शास्त्र की विवेचना के उपरान्त वर्तमान परिदृश्य में स्त्री-विमर्श को केन्द्र में रखकर उस सौन्दर्य शास्त्र पर चर्चा करना अति आवश्यक है।

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता” “नारी तुम केवल श्रद्धा हो” “एक नहीं दो—दो मात्राएं नर से बढ़कर नारी।”

### “स्त्रियःसत्यायते अपत्र पठाकेर्मणः।”

वेदों, पुराणों, ब्राह्मणों जैसे ग्रन्थों तथा कवियों द्वारा सम्मानित अनेकानेक अलंकारों से सुसज्जित, भद्रा रोद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, कृष्णा, धुमरा, देवी आदि नामों से और रूपों से सम्पूर्ण दुर्गा सप्तशती में गौरवमण्डित यह नारी देवताओं द्वारा पूजनीय मानी गई।

प्रकृति के प्रत्येक अंश में विद्यमान कहीं शक्ति, कहीं चेतना, कहीं लज्जा, कहीं प्रतिष्ठा कहीं निद्रा तथा कहीं श्रद्धा आदि अनेकानेक नामों से देवी स्वरूपा नारी स्तुत्य और सुसज्जित रही है।

पित्रों का और अपना (पुरुष) स्वर्ग सबको नारी के अधीन—

“दाराधीरास्वया स्वर्गः पितृणा मात्मनश्चीह ।” (मनुस्मृति 9/28) मानने वाला हमारा पुरुष प्रधान समाज और साहित्य नारी की प्रसन्नता में ही सबकी प्रसन्नता और नारी के दुख में सम्पूर्ण परिवार के दुःखी होने की धारणा (स्त्रियां तुरोचभानायां, सर्व तद्रोचते कुलम् । तस्या त्वरोचभानायां सर्वमेश न रोचते । (मनुस्मृति 3/62) रखने वाले मनु के संसार में जहाँ सदैव नारी का मान-सम्मान करने की बात कही गई है ।

ऐसे में ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई नारी पर पुनः विचार करने की । उसकी सत्ता, उसके अधिकार, उसके अस्तित्व को फिर से टटोलने की, उस पर विमर्श करने की ।

भारतीय वाङ्मय में नारी की छवि अन्तकाल से ही अपराजय, सबला, निर्मला, सती, व्यवहारकुशलता, समयानुकूल अपनी स्थिति और शक्ति का परिचय देने वाली विवकेशीला विदुषी की रही है । उसकी शक्ति का स्रोत रही है । वह एक ही समय पर अनेक हैं यह सब जानते हुए भी आज फिर उस पर विमर्श करने की आवश्यकता क्यों पड़ी है । क्यों नहीं पुरुष-विमर्श की बात की जाती । इसके पीछे साफ-साफ पुरुष प्रधान समाज की राजनीति की विसात बिछी है । जिस पर प्यादों के स्थान पर नारी को ही विभिन्न चालों में चलाया जा रहा है ।

वह नारी जो कभी शील, सौन्दर्य, सौम्यता और शालीनता की मूर्ति थी उसे ही पुरुष समाज ने गली, मोहल्लों, चौराहों और चौपालों की चर्चा का केन्द्र बना लिया है । वैसे किस हद तक इन चर्चाओं के लिए नारी भी जिम्मेदार है ।

वर्तमान में विगत 15-20 वर्षों से चिन्तन का मुख्य विषय “नारी-विमर्श” रहा है ।

नारी शब्द का सर्वप्रथम संकेत “पारस्कर गृहसूत्र” तथा अथर्ववेद में मिलता है- विवाह काल में कन्यादान-पाणिग्रहण के बाद लाजाहोम में कन्या अपने लिए अपने मुख से नारी शब्द का सबसे पहले प्रयोग करती है । (पासकर गृहसूत्र 1/6/2) अथर्ववेद 14/2/63) क्योंकि इससे पहले उसका नर-सम्बन्ध नहीं रहा है ।

वैसे तो नारी—विमर्श नारी के जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाता है उसे क्या करना चाहिए, कैसे रहना चाहिए, क्या पहनना चाहिए, क्या कहना चाहिए कैसे बैठे, किससे बोले, कैसे बोले, कहाँ जाए? आदि मगर ये सब उसे बंधन में बाँधने के विमर्श है।

उसकी मानवीय धरातल पर पहचान बनाने के लिए साहित्यिक स्तर पर कई आन्दोलन भी छिड़े हैं जिनको वर्तमान में “नारी—विमर्श का स्वरूप” उसका अर्थ कुछ विशिष्ट अर्थों का पर्याय बन गया है। जिसने दैहिक स्वतन्त्रता, उन्मुक्त भोग तथा यौन मुक्ति जैसी आजादी का स्थान ले लिया है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि जीवन्त प्राणी के लिए देह ही ऐसा “सिम्बल” है जिससे उसकी पहचान है लेकिन इस देह का इस प्रकार दोहन, प्रदर्शन शोषण समाज में एक विस्फोटक स्थिति है।

भक्तिकाल के संत—कवियों से आज के स्त्री—विमर्श की कसौटी पर खरे उतरने की माँग करना असंगत है परन्तु उनके समय और समाज का ध्यान रखते हुए आज के सन्दर्भ में उनकी जरूरत को रेखांकित करना भी कम आवश्यक नहीं है।

### कबीर के काव्य में स्त्री—विमर्श

कबीर का स्त्रीमन पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति से अनभिज्ञ नहीं है। पितृसत्तात्मक समाज की मुख्य इकाई परिवार है।

सर्वप्रथम परिवार ही स्त्री का “कंस्ट्रक्ट” तैयार करता है।

कबीर परिवार में स्त्री की विडम्बनापूर्ण स्थिति की ओर संकेत करते हुए कहते हैं

“सासु ननद दोउ देत उलाहन रहब लाज मुख गाइ हो।।”

डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल के शब्दों में कहना उचित है— “कबीर के सारे पदों, साखियों को यदि विराट रचना के रूप में पढ़े तो देखेंगे कि यह प्रेमाभिव्यक्ति के धरातल पर नारी की कविता है— नारी के बारे में कविता नहीं।”

## सूर के काव्य में स्त्री-विमर्श

सूर की स्त्रियाँ व्यक्ति-चेतना से सम्पन्न एक स्वतंत्र इकाई है। सूर की गोपियाँ, पितृसत्तात्मक सामंती व्यवस्था की स्त्रियाँ नहीं है। सूर का वृन्दावन एक उन्मुक्त समाज की प्रतिच्छवि है। उस समाज की संरचना पदानुक्रमिक सामंती सामाजिक व्यवस्था से मुक्त है इसलिए पितृसत्तात्मकता के दबावों से भी मुक्त है।

मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में कहें, तो सूर का वृन्दावन ऐसा ही यूटोपिया है, जिसमें समाज की स्मृति और भावी समाज की संभावना का योग है। किसी भी समाज में, स्त्री की स्थिति पुरुषवादी सामाजिक व्यवस्था तय करती है। सूर का समाज पितृसत्तात्मक विचारों से मुक्त समाज है।

सूर के यहाँ स्त्री-विमर्श न केवल अपने समय के समाज से बल्कि आज के समाज से भी बहुत आगे है।

## तुलसी के काव्य में स्त्री-विमर्श

तुलसी के सभी पात्र मर्यादा की नियति में बँधे हैं। राम की नियति है सीता की अग्नि परीक्षा लेना और सीता की नियति है अग्नि परीक्षा देना। “शुचिता का “कंस्ट्रक्ट” स्त्री से भयभीत होकर पुरुष ने तैयार किया है। कहीं न कहीं तुलसी भी इस भय से मुक्त नहीं थे। उनके व्यक्तिगत जीवन को लेकर प्रचलित किवदंतियाँ (पत्नी से उनके सम्बन्ध ) भी इस बात की पुष्टि करती है। मर्यादा से आक्रांत तुलसी शायद इसलिए भी राम की बहुरिया न बनकर राम के दास बनकर रह जाते हैं। प्रेम और दासता में निहित अंतर के कारण ही कबीर और तुलसी के स्त्री-विमर्श में भिन्नता है।

साहित्यिक स्तर पर हमारे यहाँ नारी विमर्श नारी चेतना, नारी अस्मिता, नारी अस्तित्व नारी संघर्ष की बात कला जगत में 1870 में पण्डित गौरी दत्त के उपरान्त “देवरानी जेठानी की कहानी” से आरम्भ होती है जिसमें नारी शिक्षा की अनिवार्यता और विधवा विवाह के पुरजोर सिफारिश की गई है।

इसके बाद मुंशी ईश्वरी प्रसाद का मुर्दरिस, 1972 में मुंशी कल्याण

राम का "वामा-शिक्षक" 1977 में श्रद्धा राम फल्लौरी का "भाग्यवती" उपन्यास आया जिसकी नायिका भाग्यवती प्रत्येक स्त्री को निडर बनने और कानून की शिक्षा प्राप्त करने का मशवरा देती है ताकि वे स्वावलम्बी बन अपने अधिकारों के प्रति सजग हो सकें।

गबन, गोदान, निर्मला, मनोरमा, सेवासदन जैसे उपन्यास तथा मानसरोवर (कथा-संग्रह) के दोनों खण्डों में इनकी कहानियाँ विश्व स्तर पर नारी-विमर्श का अद्वितीय उदाहरण हैं। उपन्यासों में हमारे सामाजिक कार्यकर्ता और समाज सुधारकों के सभी क्रान्तिकारी विचारों, सिद्धान्तों व संघर्षों का इतिहास उद्देश्यपरक ढंग से दिया गया है। तत्कालीन समाज सुधारकों ने नारी को जो दर्जा समाज में दिलाने का प्रयास किया था उसके अन्तर्गत नारी शिक्षा, विधवा समस्या, बाल-विवाह, अनमेल विवाह जैसी सभी समस्याओं को उठाया गया है समाज में आए नारी जीवन के उत्साहपूर्ण उन्नतिपरक परिवर्तन का श्रेय हमारे पुरुष क्रान्तिकारियों, लेखों और विचारकों को ही नहीं जाता बल्कि स्वयं नारी ने भी अपनी पहचान को बनाने के लिए अद्वितीय भूमिका अदा की है। समाज में आए नारी जीवन के उत्साहपूर्ण उन्नतिपरक परिवर्तन का श्रेय हमारे पुरुष क्रान्तिकारियों, लेखों और विचारकों को ही नहीं जाता बल्कि स्वयं ने भी अपनी पहचान को बनाने के लिये अद्वितीय भूमिका अदा की है। सर्वप्रथम बंग महिला की "दुलाईवाली" इसका उदाहरण है जिसमें नारी अधिकारों पर किसी नारी ने सर्वप्रथम लेखनी चलाई। नारी संघर्ष, उसकी पीड़ा, उसकी वेदना, उसके अन्तर्मन की दुखती रग को छेड़ बंग महिला ने उसे मुक्ति का मार्ग दिखाया। तत्पश्चात महादेवी वर्मा जी की "शृंखला की कड़ियाँ" ने नारी अधिकारों की सशक्त पक्षधर बन भारतीय नारी के चारों तरफ जकड़ी अशिक्षा, पर्दा, दासत्व और घुटन की विवशता की कड़ियों को तोड़ने का काम किया है। प्रत्येक रचनात्मक का अपना एक विशिष्ट सोच होता है। कलम के सिपाही मुंशी प्रेमचन्द की सोच, उनका नारी-विमर्श भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध के रूप में उभरकर आया है। अपने

कथा—जगत के माध्यम से उन्होंने नारी को एक ओर पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति दिलाने की कोशिश की है तो दूसरी ओर उसे शिक्षिता बना आर्थिक रूप से सम्पन्न और स्वतन्त्र बनाने का प्रयास भी किया है।

नारी को “सम्पत्ति के स्थान पर जीवन्त प्राणी— का दर्जा दिया (कुसुम में मानसरोवर—2, पृ0 19) नारी को उसका आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, पुनः दिलकर धर्म की खोखली दलीलों को नकारते हुए उसे किसी का भी मोहताज न बन स्वावलम्बी बनाया— “ अगर पुरुषस्त्री का मोहताज नहीं तो स्त्री भी पुरुष की मोहताज क्यों (कुसुम, पृ0 14) ‘गबन’ ‘गोदान’ ‘सेवासदन’ की ‘जालपा’ ‘सुमन’ ‘धनिया’ जैसी औपन्यासिक पात्राओं के द्वारा तथा नैराश्य लीला घास वाली कुसुम जैसी कथा जगत की नारियों के द्वारा प्रेमचन्द ने न केवल वैचारिक क्रान्ति ही की बल्कि सामाजिक स्तर पर भी नारी—विमर्श का बिगुल बजा दिया।

भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्री पुनः कुछ नये सवाल उठा रही है। इस बार स्त्री केवल सत्ता से नहीं बल्कि दूसरे दौर की नारीवादी चिंतकों से कह रही है हमने अपने भीतर की औरत को खोज निकाला है।

जैसे स्माइले जैसी नारीवादी उपन्यासकार का कहना है— “मैं सुन्दर भी दिखना चाहती हूँ और बुद्धिमान भी मुझे दोनों की जरूरत है और दोनों को ही मैं हासिल करके रहूँगी।

स्त्री की भूमिका में नये—नये आयाम जुड़ रहे हैं। भोगवाद सेक्सवाद सभी का प्रचलन बढ़ रहा है कहा जा रहा है कि उत्पीड़न की चर्चा के बदले अच्छा होगा स्त्री समाज, स्त्री पुरुष, सेक्स और सौन्दर्य को अपनाकर चले।

सत्तर के दशक में ‘सीमोन द बोउआर’ ने लिखा था— “ चेहरे पर एक हल्की सी झुर्री लिपिस्टिक का होंठों पर जरा सा छितरा जाना उसका सारा दिन खराब करने को काफी है। स्त्री को यदि मुक्ति चाहिए तो पहले गहने—कपड़ों से, प्रसाधन से मुक्ति पा ले। ये तो बेड़ियां जिन्हें अब तक अज्ञानतावश वह पहनती रही और वस्तु रूप में स्वयं को पेश करती रही।”

भारतीय साहित्य में नारी—विमर्श वात्स्यायन के कामसूत्र और

बौद्धकालीन रचना 'थेरी-गाथा' 'सूरदास के भ्रमरगीत', सूरसागर, मीरा की पदावलियों में अपने उत्कर्ष पर दिखाई पड़ते हैं। नारी जब तक अपने अन्तःकरण को नहीं पहचानती है तब तक ही वह कमजोर है, उसका मनोबल किसी भी पुरुष, किसी भी देवता को धता बता सकता है।

आजादी के बाद अनेकानेक परिवर्तनों के साथ-साथ जो एक नया बोध उभरकर आया वह आधुनिक बोध, यथार्थबोध के नाम पर उच्च्रंखलता, उन्मुक्तता और निरंकुशता के रूप में उभरकर आया। लेखन स्वतन्त्रता के नाम पर नारी देह को उघाड़कर रखा जाने लगा। पर्दानशी, मर्यादाशील, घर में दबी ढकी औरत से सबका मोहभंग हो गया और उसके एक-एक वस्त्र उतरने लगे। जहाँ धर्मान्धता, अशिक्षा, पर्दा, सती, विधवा जैसी यंत्रणापूर्ण कुप्रथाओं से नारी को मुक्ति दी गई वही उसके दैहिक मुक्ति का भी चलन बताया गया।

खुद औरत भी घर की देहरी से बाहर क्या निकली राजसत्ता के साथ-साथ अपने देह सत्ता को भी पहचान लिया जिसकी अभिव्यक्ति इस्मत चुगतरई की "लिहाफ" कृष्णा सोबती के "मित्रों मरजानी", "सूरजमुखी अंधेरे के", "यारों के यार" मृदुला गर्ग के कठगुलाब, उसके हिस्से की धूप, मन्नू भण्डारी की "आपका बंटी", अमृता प्रीतम के 'रसीदी टिकट' "चक नम्बर 36" में साफ देखा जा सकता है।

दूसरी कड़ी में प्रभा खेतान के "छिन्नमस्ता", 'पीली आँधी', मैत्रेयी पुष्पा के "चाक", 'झूठा नट', "इदन्नम्", 'अल्मा कबूतरी' अलका सरावगी का "कलिकथा-वाया बाइपास" नासिरा शर्मा का "ठीकरे का मंगनी" तथा "शाल्मली" दीप्ति खंडेलवाल का प्रतिध्वनियों, "देह की सीता" उशा प्रियम्बदा का "पचपन खम्भे लाल दीवारे" "शेश-यात्रा" तथा रुकोगी नहीं राधिका, कुसुम अंसल का उसकी पंचवटी, "तापसी" तथा 'अपने-अपने रास्ते', मंजुल भगत का 'अनारो' राजी सेठ का तत्सम, " निश्कवच" चित्र मुद्गल का "आवाँ" एक "जमीन अपनी-अपनी" गीतांजलि श्री का



“तिरोहित”, माई मृणाल पांडे की लड़कियाँ प्रथा शास्त्री का सीढिया, मेहरुन्सिसा परवे का ‘अकेला पलाश, ममता कालिया का ‘बेघर’ ‘एक पत्नी के नोट्स’ ‘बोलने वाली औरत आशापूर्ण देवी का ‘प्रथम प्रतिश्रुति’ जैनेन्द्र का “सुनीता”, त्यागपत्र, “पतिता” ‘कल्याणी” सुरेन्द्र वर्मा का ‘मुझे चाँद चाहिए’ अज्ञेय का अपने-अपने ‘अजनबी’ नदी के द्वीप, सुशील कुमार सिंह के सत्यावती, गांधारी, कुती, देवकी रुकमणी और पांचाली तथा कृष्ण बलदेव वैद के उसका बचपन, एक नौकरानी की डायरी, जैसे उपन्यास तथा कृष्णा अग्निगोत्री की अपने-अपने कुरुक्षेत्र, नवनीत मिश्रा की परास्त, उषा महाजन की शोषित अखिलेश की यशगान, ममता कालिया की बोलने वाली औरत, मधु कांकरिया की नामर्द, चन्नीसिंह की सबसे कीमती औरत, शिवमूर्ति की तिरियाचरित तथा कसाई बाड़ा, सृजम की बैल बधिया, जया जादवानी की ‘मुझे ही होना है बार-बार’, उदय प्रकाश की ‘पीली छतरी वाली लड़की’, अरविन्द जैन की ‘लापता लड़की’, इन्दुवाली की दूसरी ‘औरत होने का सुख’ बटुक चर्तुवेदी की ‘एक और सीता’, इन्दु रश्मि की ‘मोहबंध’, मालती जोशी की औरत एक रात है, स्वयं प्रकाश का ‘आदमी जात का आदमी’ उषा महाजन का ‘और सावित्री ने काह प्रदेश राम वर्मा की बुधिया की तीन राते’ तथा स्वदेश कुमार की एक पुरुष नारी, अल्का सरावगी की दूसरे किले में औरत, प्रथा सक्सेना की जलती छाया, ऐसी रचनाएं हैं जो हिन्दी कथा जगत में नारी मुक्ति, चेतना, अधिकार, स्वातन्त्र्य, उच्चृंखलता की बात करती हैं।

### संदर्भ —

1. डा0 कुमार विमल : सौन्दर्य शास्त्र के तत्व
2. मैत्रेयी पुष्पा : चर्चा हमारा
3. अनामिका : स्त्री विमर्श की उत्तर —गाथा
4. डा0 प्रभा खेतान : भूमण्डलीकरण के दबाव मे नारीवाद (परिषद पत्रिका) (अप्रैल 2003 से 2004)

## ••• वीथिका •••

---

5. डा0 कुमार विमल : स्त्रीवादी विमर्श
6. मेघा : मध्यकालीन संत काव्य में स्त्री-विमर्श (परिषद पत्रिका)(अप्रैल 2003 से 2004)
7. डा0 सरिता वाशिष्ठ : हिन्दी कथा- साहित्य में नारी-विमर्श

## तर्पण : समकालीन ग्रामीण संरचना में जातीय उत्पीड़न और जाति संघर्ष का सर्जनात्मक दस्तावेज

\* सरसिज कुमार सिंह

आधुनिक युगीन संवेदना के समर्थ कथाकार शिवमूर्ति ने अनेक कहानियों एवं उपन्यासों की रचना की है। 'कसाईबाड़ा', तिरियाचरित्तर, केशर—कस्तूरी आदि कहानियाँ हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ कहानियों में हैं। इनकी औपन्यासिक कृतियाँ—त्रिशूल, तर्पण आखिरी छलांग आदि हैं। इनमें 'तर्पण' शीर्षक उपन्यास वर्ग—संघर्ष एवं वर्ण संघर्ष पर आधारित उत्कृष्ट रचना है। आलोच्य उपन्यास में शताब्दियों से चली आ रही सवर्णों की मनुवादी विचारधारा जिसमें दलित—शोषित वर्ग निरन्तर पिस रहा है, पर जोरदार प्रहार किया गया है। इसमें जहाँ एक ओर हजारों वर्षों से पीड़ित जनों का यथार्थ वर्णित है, तो वहीं दूसरी ओर उनकी मुक्ति चेतना की कथा का उल्लेख किया गया है।

शिवमूर्ति का 'तर्पण' उपन्यास दलित—मुक्ति चेतना का एक ऐसा दस्तावेज है जिसके माध्यम से समाज के उच्च वर्ग के लोगों के चंगुल से निम्न वर्ग के लोगों को उन्हीं के द्वारा उत्पन्न क्रान्तीय चेतना से मुक्त कराने का प्रयास किया जा सकता है।

उपन्यास का प्रारम्भ एक ऐसी घटना के चित्रण से किया गया है जो हजारों वर्षों से होती चली आ रही है। जिसे समाज के वर्ग विशेष ने नियति का खेल मान लिया है तथा एक वर्ग अपना अधिकार समझकर उसे करता चला आ रहा है।

गाँव के ब्राह्मण धर्मदत्त का बेटा चन्दर दलित युवती राजपत्ती से बलात्कार का प्रयास करता है किन्तु उसके साहस के आगे ब्राह्मण युवक का दुस्साहस छोटा पड़ जाता है, और वह अपने इस निकृष्ट कर्म में सफल नहीं हो पाता है। दलित युवती शोर मचाती है, पास के दूसरे खेत में घास छील

\* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)।

रही स्त्री (पेरमा की माई) उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ती है। इससे उस युवती को बल मिलता है, तथा वह ब्राह्मण युवक चन्दर को पूरी हिम्मत से पकड़ लेती है। इस समय वर्गीय चेतना का स्वर मुखरित होता है। परेमा की माई उसे क्रोध में बिना किसी संकोच के अनेक नसीहतें दे डालती हैं— “अरे तुम लोगों की आँख का पानी एक दम मर गया है? आँख में फूली पड़ गई है, बिटिया—बहिन की पहचान नहीं रह गई है; तो कैलसिया (चन्दर की बहन) को काहे नहीं पकड़ लेता घरवे में .....तर्पण पृ0 10

इस खबर को पूरे गाँव में फैलते देर न लगी। युवती के पिता (पियारे), सामाजिक कार्यकर्ता (भाई जी) तथा गाँव के अन्य अनेक बुजुर्ग, नवयुवक आदि मिलकर बलात्कार की झूठी रिपोर्ट लिखवाने का फैसला करते हैं। किन्तु ऐसी परिस्थिति में पुलिस महकमें की यथार्थ स्थिति दृष्टिगत होती है। दिनभर के इंतजार के बावजूद रिपोर्ट नहीं लिखी जाती। सामाजिक कार्यकर्ता (भाई जी) को भी दीवान के तीखे, अपमानजनक शब्द बाणों से आहत होना पड़ता है। प्रार्थना पत्र लिखने के लिए एक कागज माँगने पर दीवान उन्हें घुड़क लेता है और कहता है— “यह बनिया की दुकान नहीं थाना है” (तर्पण पृ0 — 29) अथक प्रयासों के बावजूद सबल वर्ग वादी पर भारी पड़ता है, रिपोर्ट नहीं लिखी जाती। पुलिस वाले ले—देकर शान्त रह जाते हैं।

उपन्यास में आकर्षक बिन्दु तब आता है; जब पुलिस कप्तान के दबाव में आकर दरोगा ब्राह्मण युवक को गिरफ्तार कर थाने ले जाता है, तथा रसूखदार बाप के सामने ही दो—चार थप्पड़ जड़ देता है, धर्मदत्त अपने बेटे को रिहा करवाने के लिए एड़ी—चोटी का दम लगा देते हैं। नामी वकील करते हैं, किन्तु उसकी रिहाई नहीं हो पाती। हमेशा की तरह उच्च वर्ग एक होता है। धरमू पण्डित ठाकुर पल्टन सिंह को प्राचीन परम्पराओं का वास्ता देकर उसके दूर के रिश्तेदार सी0ओ0 साहब से मामले को शान्त करवाने की बात करता है— “जाने—अनजाने कोई चूक हुई हो तो उसे भूल जाइए, लम्बरदार। सनातन से क्षत्रिय दुष्टों, पापियों, असुरों और राक्षसों से ब्राह्मणों

की रक्षा करते आए हैं। सी0ओ0 साहब से कहकर मामला रफा-दफा करवाइए।” (तर्पण पृष्ठ-74)

प्राचीन काल से जाति का दंश झेलने वाले, असुर, राक्षस आदि संज्ञा प्राप्त निम्न वर्ग के लोग आपस में विचार करते हैं, कि यदि किसी भी स्थिति में उस ब्राह्मण युवक को कुछ दिन और जेल में सड़ाया जा सकता है तो करेंगे— “मुन्ना कहता है— “पैसा खर्च करके अगर उसे साल भर जेल में सड़ाया जा सकता है तो सड़ाया जायेगा।”

“मगर पैसा आयेगा कहाँ से?”

“चंदा किया जायेगा।” भाई जी कहते हैं— “बिरादरी के हर घर पीछे अगर पाँच सौ रुपये की भी मदद मिल जायेगी तो.....।” (तर्पण पृष्ठ-77)

उच्च वर्ग सदा से निम्न वर्ग के साथ छल-छद्म का खेल खेलता रहा है। जब सब ओर से असफल हुआ तो धन का लोभ दिखाकर उसे अपनी ही जाति के लोगों के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश करता है। किन्तु यहाँ दाँव उलटा पड़ता है। धरमू की पत्नी जब गाँव की ही एक दलित वृद्धा (रमझरिया की दादी) को पैसे का लोभ देकर न्यायालय में झूठी गवाही देने की बात कहती है, तो वह ऐसा करने से न सिर्फ मना करती है, बल्कि उसे नसीहत भी दे डालती है—“ हाथ नाचती है बुढ़िया ‘बड़े-बड़े वकील-बरिस्टर को हजार रुपये देने में दर्द नहीं होता और हमे दिखाती है पचास रूपल्ली। पचास रूपल्ली मे ‘धरम’ लेने चली है। पहले ‘वैसे धरम लेता है बेटा। फिर ‘ऐसे’ धरम लेती है महतारी। नहीं बेचना हमें अपना धरम।” (तर्पण पृष्ठ-80)

झूठे गवाह और झूठी दलीलें एक बार फिर सबल सवर्णों का हथियार बनते हैं। इसी आधार पर ब्राह्मण युवक चन्दर न्यायालय से मुक्त होकर पूरे उत्साह के साथ— “चन्दर भैया जिन्दाबाद” (तर्पण पृष्ठ-94) के जयघोष के साथ अपने घर वापस आता है। घर पहुँचकर अपने विजयनाद के रूप में बन्दूक की गोलियाँ दागता है। जो मानों शोषक-वर्ग की शोषित

वर्ग पर विजयनाद प्रतीत होती है। “घर में घुसते ही अपनी दुनाली बन्दूक निकालकर बाहर आता है। चन्द्र हवाई फायर करता है— धॉय—धॉय।” (तर्पण पृष्ठ—95)

चन्द्र की करतूत से पूरी दलित पट्टी किसी अप्रत्याशित घटना से आशंकित हो उठती है। उसके मन में अनेक घटनाएँ जीवित हो उठती हैं। सामूहिक नरसंहार, बलात्कार, लूटपाट आदि जो पूर्व में अपने झूठे अपमान से बौखलाए सवर्णों ने कई बार किया है— “चमरौटी के लोग सनाका खा जाते हैं। अपनी—अपनी झोपड़ी में भागने को तैयार। बहुत बार सुना गया है— बौखलाए ठाकुर—बाभनों ने हरिजन बस्ती फूँक दी। सामूहिक नरसंहार। सामूहिक बलात्कार कतल की रात न हो जाय आज की रात। दो महीने जेल की सजा काट कर आया है। कुछ भी कर सकता है....” (तर्पण पृष्ठ—95)

हरिजन एकट कानून दलितों के लिए वरदान तथा सवर्णों के लिए अभिशाप के रूप में है। उपन्यास में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है— “बड़ा बेढ़ब कानून है” मामा जी बताते हैं “जैसे पहले ब्रह्म हत्या का कोई प्रायश्चित नहीं था, वैसे इस “चमरदोखी” कानूनी की कोई काट नहीं है, जेल जाने के सिवा। ब्रह्म हत्या का पाप तो हत्या होने पर लगता था। चमरदोखी तो चमार को चमार कह देने भी से ही लगा जाता है।” (तर्पण पृष्ठ—95)

गाँव के ठाकुरों को लगता है कि ब्राह्मण और शूद्र के झगड़े में ब्राह्मण की तरफदारी न करना शूद्र उपकार करने के समान है तथा “शूद्र उपकार ब्रह्महत्या के बराबर है।” (तर्पण पृष्ठ—98)। धरमू की पत्नी के जली—कटी सुनाने पर वर्ग विशेष की जातीय चेतना जाग्रत होती है, तथा कभी भी पलटकर जवाब न देने वाली रजपतिया की माँ पण्डिताइन को गालियाँ देते हुए कहती है— “दिमाग तो खराब है तुम्हारे दर्जन भर ‘दामादों’ का जो गोली—बन्दूक लेकर गाँव के दरवाजे—दरवाजे धमकाते घूम रहे हैं।” (तर्पण—पृष्ठ— 99) इस पर मालकिन उससे तेज आवाज में कहती है— ‘दूर

से बात कर नीच"। खोपड़ी पर चढ़ जायेगी क्या?" रजपतिया की माँ ईंट का जवाब पत्थर से देती है— "नीच होगी तुम तुम्हारे पूत—भतार। जो गली—गली कूकूर जैसे पूँछ हिलाते सूँघते घूमते हैं..... हम किस बात के नीचे हुए रे।" (तर्पण पृष्ठ—99)

उपन्यास में क्रान्ति का स्वर मुखर है। सामाजिक कार्यकर्ता (भाई जी) सभी युवकों को सचेत रहने तथा दूसरे पर निर्भर न रहकर अपनी सुरक्षा स्वयं करने की बात करता है— "जैसे रेलवे स्टेशन पर लिखा होता है अपने सामान की सुरक्षा स्वयं कीजिए वैसे ही मैं कहता हूँ। अपने जान—माल की रक्षा आप कीजिए। जब भी घर से निकलिये लाठी—डंडे हाथ में लेकर निकलिये। हाथ में लाठी देखते ही अगला मुँह सम्भालकर बात करता है। नौजवान लोग कमर में चाकू—गुप्ती खोंसकर चलें। खाली खोंसे ही न रहें। किसी न किसी बहाने उसका प्रदर्शन भी करें।" (तर्पण पृष्ठ—100)

उपन्यासकार ने गाँव में होने वाले स्वाँग के माध्यम से लोगों तक क्रान्ति की चेतना पहुंचाने का तथा सवर्णों की दुर्दशा का चित्रण किया है। नर्तकी एक गीत गाकर लोगों को बताती है कि कारागार में चन्दर पण्डित के पिता धरमू का क्या हाल रहा होगा— "अरे पूत के कुकरमें धरमू गए जेहल खनवा।"

मुँगरन मार परत होई

जेहल खनवा मा धरमू रोवल होई।" (तर्पण पृष्ठ—102)

उपन्यास का अन्त 'तर्पण' शीर्षक को चरितार्थ करते हुए किया गया है। पियारे का बेटा मुन्ना ब्राह्मण युवक चन्दर पर जोरदार हमला करके चित कर देता है, तथा अपने वंशजों एवं अपनी बहन जपतिया के अपमान का बदला लेने के लिए उसकी नाक काट लेता है। मुन्ना के इस साहसिक कार्य पर उसका पिता पियारे मन ही मन प्रसन्न होता है तथा कहता है— "वह खुद कब से अरमान पाले था ऐसा करने का..... लेकिन कुछ नहीं कर पाया। कब से जोर जुल्म सह रही है उसकी जाति..... कोई माई का लाल न पैदा हुआ मुँहा—मुँही जवाब देने वाला और आज उसके बेटे ने ऐसा कर दिखाया

तो छिपे-छिपे घूमने का क्या मतलब? यह तो दुनिया-जहान में डंका पीटकर बताने वाला काम है। लेकिन नाक क्यों काटा? सीधे मूँड़ ही क्यों न काट लिया" (तर्पण पृष्ठ-113)

पियारे दरोगा के सम्मुख जुर्म स्वीकार करके आत्मसमर्पण कर देता है। दरोगा के पूछने पर कि किसके ललकारने से काटा" तो वह बिना किसी पश्चाताप एवं संकोच से जबाब देता है- "बहन-बेटियों की इज्जत पर डाका डालने वाले को ठिकाने लगाने के लिए भला किसी के ललकारने-भड़काने की जरूरत पड़ती है? अकेले काटा सरकार।" (तर्पण पृष्ठ-114)

पियारे के माध्यम से राजनेताओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'नेता कभी कुछ करते हैं सरकार? ऊ तो डर के मारे पेड़ पर चढ़ गए थे।' (तर्पण पृष्ठ-114)

ब्राह्मणों द्वारा बनाये गये नियम-कानून, पूर्वजों को तर्पण करने के लिए चारो-धाम जाने की प्रथा आदि पर कुठाराघात करते हुए पियारे जेल जाते समय अत्यन्त संतुष्ट है, तथा जेल को ही चारो धाम इस अर्थ में मानता है कि इन सवर्णों के पाप से मुक्त होकर ही वह तथा उसके पूर्वज तृप्त हो सकते हैं- "जेल वाहन की जाली में मुँह सटाकर फागुन की टंडी पुरवा को फेफड़े में भरता है पियारे और आँखे मूँद लेता है। उसे लगता है, जैसे पुरखों का 'तर्पण' करने के लिए 'गया-जगन्नाथ जी' जा रहा है।" (तर्पण पृष्ठ-116)

इस प्रकार उपन्यास का अन्त वर्षों से चली आ रही है घृणित परम्परा पर घृणा किये जाने वाले वर्ग की विजय एवं उसकी सुखद आत्मानुभूति पर होता है। उपन्यास में अनेक ऐसे अनछुए पहलू रह गए हैं जिनका इतने कम शब्दों में विवेचन उद्घाटन कर पाना सम्भव नहीं है।

उपन्यासकार शिवमूर्ति वर्तमान परिप्रेक्ष्य के ग्रामीण यथार्थ एवं वास्तविक चेतना के समर्थ रचनाकार है। अवध प्रान्त के गाँव के जनसाधारण की अवधी भाषा के शब्दों तथा अनेक कहावतों एवं मुहावरों के



प्रयोग से उपन्यास को जीवन्त स्वरूप प्रदान किया है। गँवई भाषा, जीवन, रीति-परम्पराएँ, रहन-सहन आदि इसमें साकार रूप में चित्रित किए गए हैं। संविधान के विभिन्न धाराओं यथा – 164, 364/511, 354 आदि तथा मुकदमें की कार्यवाही, अधिवक्ताओं का बहस-मुबाहिसा, राजनीतिक ढाँच, पुलिस महकमें में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि के सफल चित्रण से ज्ञात होता है कि उपन्यासकार ने समाज को सूक्ष्म दृष्टि से देखा-परखा है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि "तर्पण" उपन्यास वर्गीय चेतना एवं वर्ग संघर्ष तथा ग्रामीण अंचल में व्याप्त सवर्णों के सर्वहारा पर अत्याचार का एक स्वच्छ प्रतिबिम्ब है।

## संगीत में ताल का महत्व

\* रुचि रानी गुप्ता

काल क्रिया के नाप को ही ताल कहते हैं, जैसा अमर कोश में उल्लिखित है, 'तालः काल क्रिया मानम्' ताल संगीत को एक निश्चित नियम या समय के बन्धन में बांधता है।

संगीत दर्पण में तकार से शंकर या शिव और लकार से पार्वती या शक्ति दोनो का योग 'ताल' कहलाया —

तकारे शंकरः प्रोक्तो लकारे पार्वती स्मृता।

शिवशक्ति समायोगात्ताल नामाभिधीयते ॥ मृ०म०पृ० 27

संस्कृत पण्डितों की यह विशेषता रही है कि वे विभिन्न वर्णों का धातु रूप शब्द को देते हैं यहाँ परिमाण सूचक 'मा' धातु से मात्रा तथा रंजक चंद धातु से छंद शब्द का उद्भव हुआ है। विद्वानों का मत है कि ताल का धातु रूप 'तल' है, इसे हम भित्ति या बुनियाद कहते हैं। गीत वाद्य व नृत्य तीनों की प्रतिष्ठा ताल पर हुयी है संभवतः इसीलिए प्रतिष्ठावाचक धातुरूप तल से ताल शब्द बना हो सकता है।

“तालस्तल प्रतिष्ठायामिति घातोर्घत्रिस्मृतः।

गीत वाद्य तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठतम्” ॥

विश्वविधाता द्वारा सृजित समस्त प्रकृति में समयक्रम की जो निश्चित गति है वही संगीत में ताल बनकर उसे उपयोगी, रसपूर्ण और स्थायी स्वरूप देती है।

उत्पत्यादि त्रयं यतस्तालेन जायते।

कीटकादि पशूनां च तालैः गतिर्भवेत् ॥

यानि कानि च कर्माणि लोके तालाश्रितानि च

आदित्यादित गृहानाचं तालेनैव गतिर्भवेत् ॥

जिस प्रकार नानाविधि पुष्पों का सूत्र में पिरोकर माला के रूप में गुस्फित कर दिया जाता है उसी प्रकार ताल रूपी धागे में स्वर, अलंकार

\* शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

रूपी प्रसूनों को क्रमबद्ध कर संगीतज्ञ अपने श्रोताओं के सम्मुख संगीत का एक मनोहारी तथा आकर्षक रूप प्रस्तुत करता है।

ताल के प्रतिबन्ध के कारण ही भारतीय संगीतज्ञ को राग विस्तार के लिए सहारा मिलता है। लय को विभागों, तालों आदि में विभाजित कर दिया जाता है और ताल के इन्हीं अंगों की सहायता से एक गायक वादक या नर्तक यह सहज ही ज्ञात कर लेता है कि वह गायन वादन या नर्तन के मध्य किस स्थान पर है यह जानकर वह सम पर मिल पाता है। अतः संगीत में दक्षता के लिए ताल का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

"The Indian tala or time measure is more difficult to master than the melody or raga itself. But since the raga must be sing strictly in tala, a person cannot in any sense be said to know Indian music until he masters the techniques of the tal."

ManiShankar

“स्वर के किंचित् स्खलित संगीत भी ताल की जीवन शक्ति के कारण रसिकों को अप्रिय नहीं लगता, किन्तु सस्वर मधुर संगीत भी बेताल होने पर अप्रिय हो जाता है किंचित् बेसुरा होना मार्ग पर एक साधारण ठोकर लगना है किन्तु किंचित् बेताल होना मार्ग पर फिसल कर गिर पड़ने के समान है ठोकर खाकर संभल जाने वाले पर अन्य पथिकों की दृष्टि उतनी आकृष्ट नहीं होती जितनी मार्ग पर अव्यवस्थित फिसलकर पड़े हुए दयनीय व्यक्ति पर होती है।”

—डॉ० अरुण कुमार सेन

विभिन्न संगीत ग्रन्थों में वर्णित ताल की परिभाषायें —

- (1) ताल शब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेनधातुना ।  
गीतं वाद्यं च नृत्यं च भाति ताले प्रतिष्ठितम् ।

— संगीत मकरन्द

अर्थात् ताल का धातु रूप तल जिसे भित्ति या बुनियाद कह सकते हैं। गीत वाद्य तथा नृत्य तीनों की प्रतिष्ठा ताल पर हुई है।

- (2) तालस्तल प्रतिष्ठायमिति धातोधत्रिस्मृतः ।  
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ।।

— संगीत मकरन्द

- (3) तांडवस्याद्यवर्णेन लकारो लास्य शब्दभासाक ।  
यदा संगच्छते लोके तदा तालः प्रकीर्तितः ॥

— संगीतार्णव

ताण्डव (पुरुष) 'नृत्य' से 'ता' तथा लास्य (स्त्री) नृत्य से ल वर्ण के संयोग से ताल शब्द की व्युत्पत्ति होती है ।

- (4) ताकारे शंकरः प्रोक्तो लकारे पार्वती स्मृता ।  
शिवशक्ति समायोगात्ताल नामामिधीयते ॥

— संगीत दर्पण

तकार से शंकर और लकार से पार्वती या शक्ति योग से ताल बनी ।

- (5) हस्तद्वयस्य संयोगे वियोगे चापि वर्तते ।  
वयाप्तिमान् यो दशप्राणै स कालस्तालसंज्ञकः ॥

— रागार्णन

तल शब्द के साथ अन् प्रत्यय द्वारा ताल शब्द की व्युत्पत्ति हुई

- (6) तकार शरजन्मा सयादाकारो विष्णुरुच्यते ।  
लकारो मारुतः प्रोक्तस्ताले देवा बसन्ति ते ॥

'त' कार शरजन्मा अर्थात् कार्तिकेय, 'आ' कार विष्णु एवं 'ल' कार मारुत इन तीनों देवताओं द्वारा अधिष्ठित शब्द ताल है ।

- (7) कालस्य एकद्वित्रयादिमात्रोच्चारण ।

नियमितस्य क्रियायाः परिस्पन्दनामिकायाः परिच्छेदहेतुस्तालः ॥

ता, धित्, धू, न्ना आदि शब्दों के द्वारा अखण्ड कालगति को छन्दं या पदों में विभाजित करने के जो प्रयोग हुए उन्हें ही ताल कहा गया ।

दुहिणेन यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरतेन च  
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विवुधैर्मतम् ।

ताल की विशेषताएं —

- (1) ताल अखण्ड एवं निस्समी काल का वह खण्ड होता है जिसका प्रयोग संगीतार्थ (गायन, वादन, नृत्य) किया जाता है ।

- (2) ताल चक्रीय या आवर्तित होते हैं।
- (3) प्रत्येक ताल का अपना एक आकार, व्यक्तित्व, स्वरूप, छन्द जाति व लय है जो उसी रूप में आकर्षक लगता है।
- (4) ताल की मूलभूत इकाई मात्रा है।
- (5) तरल प्रदर्शित करने का एकमात्र साधन क्रियायें अर्थात् सशब्द ताली व निशब्द खाली है जो हाथ से या वाद्यों के माध्यम से की जाती है।
- (6) ताल में सम का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है ताल की पहली मात्रा को सम कहते हैं। गायन या वादन में प्रारम्भ किसी भी मात्रा से करें समाप्ति सम पर होती है।
- (7) गायन वादन व नृत्य का 'ताल' आधार स्तम्भ है।
- (8) ताल में सौन्दर्य बोध कराने की स्वाभाविक क्षमता है जो संगीत के किसी भी अंग अर्थात् गायन, वादन व नृत्य तीनों के रूप को द्विगुणित कर प्रभावशाली व मोहक बना देता है। 'ताल' सांगीतिक काल मापन का एक अमूर्त पैमाना है जो संगीत रूपी इमारत का एकमात्र पत्थर है जिसके आधार पर संगीत के तीनों स्तम्भ गायन, वादन व नृत्य दृढ़ता व स्थिरता को प्राप्त करते हैं।

साहित्य में छन्द का व संगीत में ताल का जन्म स्वाभाविक रूप से हुआ होगा। आदिमानव ने कल-कल निनादिनी नदियों में, निर्झरो के शाश्वत प्रवाह में, क्रमिक सूर्योदय व सूर्यास्त में ऋतुओं के नियमित चक्र में, जीवन के क्रमिक विकास में इन्ही छन्दों या तालों का अनुभव किया होगा। इन्ही लयों की गति भाषा का आश्रय लेकर साहित्य में छन्द बन गयी और संगीत में ताल बनकर प्राण फूंकने लगी। मानव सभ्यता के साथ ही हृदय की उत्तेजना व उल्लास का नृत्य में चित्रण हुआ। बर्बर मानव जानवरों को मारकर उन्हे कच्चा या भूनकर खाते हुए आनन्द से ताली बजाते हुए नृत्य करता था। समय की इन्ही गतियों के विभिन्न मापों में संगीतकारों ने स्वरों को और साहित्यकारों ने शब्दों में पिरोकर आगे और समृद्ध किया। वैज्ञानिक

प्रभावों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समस्त ब्रह्माण्ड लय गति से बंधा हुआ है। दैनन्दिन जीवन में मानव, पशु-पक्षी, चर-अचर सभी निश्चित समय अपना कार्य करते हैं समय अखण्ड है किन्तु उसकी उपयोगिता की वृद्धि के लिए उसे घन्टो, प्रदरो, दिनों, महीनो एवं वर्षों में विभाजित किया गया है। पृथ्वी, सूर्य की एक प्रदक्षिणा चौबीस घण्टों में करती हैं नदियों के ज्वार भाटे में भी एक निश्चित क्रम है विश्वविधाता द्वारा सृजित समस्त प्रकृति में समय क्रम की जो निश्चित गति है वहीं संगीत में ताल बनकर उसे उपयोगी, सम्पूर्ण और स्थायी रूप देती है।

संगीत रत्नाकर व नारदार्थ रागमाला के निम्नांकित श्लोक में कहा गया है कि जिस प्रकार देह में मुख प्रधान है और मुख में नासिका उसी प्रकार तालविहीन संगीत नासिकाविहीन मुख के समान है :

मुख प्रधान देहस्य नासिका मुख्या-मध्यके।

तालहीनं तथा गीतं नासाहीनं मुखं यथा।।म.ह.पु.-2

गीत वाद्य एवं नृत्य की तुलना मदमस्त हाथी से कर ताल को अंपुश की उमा दी गयी है।

तौर्यत्रिकं च मत्तेभस्तालस्तस्यांकुंश विटुः।।

सं.द.ता.६.पु.।।

भक्ति रत्नाकर के रचियता श्री नरहरि चक्रवर्ती जी का कथन है जिस प्रकार बिना पतवार के नाव होती है, वैसे ही तालविहीन संगीत होता है एवं तालविहीन संगीत अशुद्ध संगीत है।

गीते तालयुक्त ताल, बिना शुद्धि नय।

जैहे कर्णधार बिना नौका तैछे हम।।

संगीत मासिक पत्रिका के अगस्त 2006 के अंक में श्री राकेश कुमार अहिरवार ने ताल की उपादेयता इस प्रकार स्पष्ट की है -

संगीत में ताल की उपादेयता निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट की जा सकती है -

- (1) ताल संगीत को नियंत्रित कर एक निश्चित बन्धन में बाँधता है।
- (2) ताल विहीन संगीत अधूरा प्रतीत होता है।

- (3) ताल की विभिन्न लयकारियों तथा विभिन्न गायन शैलियों के साथ प्रयुक्त विभिन्न तालों द्वारा ही गायन व वादन की शोभा है।
- (4) ताल में एक चमत्कारिक गुण विद्यमान है।
- (5) तालबद्ध स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से हम दुर्लभ लिपियों को हमेशा के लिए सुरक्षित रख सकते हैं।
- (6) जिस प्रकार गायन से रस निष्पत्ति की जाती है उसी प्रकार ताल द्वारा भी रस निष्पत्ति को गतिभेद व छंदभेद उत्पन्न कर सम्भव बनाया जा सकता है।

किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि अनिबद्ध या तालविहीन संगीत अरण्यक संगीत है तथा निबद्ध या तालयुक्त संगीत सामाजिक संगीत है। बिना ताल के केवल स्वरों का आनन्द हृदय में उल्लास व उत्तेजना का सृजन करने में असमर्थ होता है एवं अनिबद्ध संगीत के निरन्तर श्रवण से हृदय में उदासीनता छा जाती है। ध्रुपद या ख्याल गायको के विस्तृत तालहीन आलापो में 'लीयते परमानन्दे यथात्मा सा परा कक्षा की अभिव्यक्ति हेतु ही संभवतः मृदंग या तबले की थाप पर संभवतः अनिबद्धता की समाप्ति को दर्शाते हैं एवं ज्यो ही ताल शब्द व स्वरों का समन्वय होता है, रसिक मन उल्लसित और उत्तेजित हो उठता है गायक वाहक के मस्तक संचालन को श्रोताओं की सहानुभूति प्राप्त होती है। संगीत में छन्द और ताल ही यथाभूतः स्वरों को गति प्रदान करते हैं काल क्रिया के नाम को ही ताल कहते हैं जैसा अमर कोश में उल्लिखित है तालः कालक्रियामानम्'। ताल संगीत को एक निश्चित नियम या समय के बन्धन में बांधता है जिस प्रकार जीवन में निश्चित समय क्रम का अभाव सुख व समृद्धि का अभाव है, उसी प्रकार तालहीन विश्रखल संगीत में सार्थकता नहीं। ताल, संगीत में विभिन्न सौन्दर्यपूर्ण चलन शैलियों का विकास करता है, जिससे संगीत के संयम की रक्षा होती है। ताल संगीत को अनुशासित कर उसके अपठित रूप, स्थायित्व एवं चमत्कारिता से श्रोताओं को विभोर कर देता है। ताल के ही कारण प्राचीन व वर्तमान संगीत को स्वर बोललिपि ताललिपि द्वारा भविष्य के लिए

सुरक्षित रखना संभव हुआ है। निश्चित ताल गति के द्वारा ही संगीत के क्रमिक आरोह—अवरोह व विराम आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। तालों में गति भेद उत्पन्न कर रस—निष्पत्ति सम्भव होती है। करुण, श्रंगार, रौद्र, वीभत्स आदि रसों के लिए तालों की विभिन्न गतियों का बड़ा महत्व है।

**संदर्भ —**

- (1) संगीत मासिक पत्रिका, अगस्त 2001 अंक, बैजनाथ प्रसाद
- (2) संगीत कला विहार, नवम्बर 2003 अंक, डॉ० नलिन सुन्दरम् भट्ट
- (3) संगीत मासिक पत्रिका, जुलाई 2005 अंक, राकेश कुमार अहिरवार  
अगस्त 2006 अंक, राकेश कुमार अहिरवार  
दिसम्बर 2007 अंक, कु० प्रतिभा श्रीवास्तव
- (4) तबला पुराण, विजय शंकर मिश्रा
- (5) ताल प्रकाश, भगवत शरण शर्मा
- (6) ताल कोश, गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव
- (7) ताल प्रबन्ध, पं० छोटे लाल मिश्रा



## भारत में पंचायतीराज व्यवस्था: इतिहास एवं विकास

\* डॉ मनोज कुमार पाण्डेय

भारत में स्वशासी संस्था के रूप में ग्राम पंचायत का इतिहास सैकड़ों वर्ष पुराना है। परम्परागत रूप से 'पंचायत' शब्द का प्रयोग पाँच व्यक्तियों की एक सभा के लिए होता है, जिन्हें 'पंच-पाँच' की संज्ञा दी जाती है। यह सभा गांव के सामूहिक मामलों पर फैसले करती है। ग्रामवासियों का 'पंच' में इतना विश्वास रहता है कि वे इन्हें पंच-परमेश्वर कहते हैं। तथापि भारत में पंचायतों का इतिहास एवं विकास अनेक उतार-चढ़ावों से भरा रहा है।

स्वतंत्रता के पश्चात् विधान के रूप में समानता के सिद्धान्त पर आधारित सार्वजनिक न्यायिक व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायतों को संवैधानिक गारंटी प्रदान की गई लेकिन स्वतंत्रता से पूर्व ही राष्ट्रीय राजनैतिक पटल पर महात्मा गाँधी के आगमन के साथ ही पंचायत के आदर्श पुनर्जीवित हो गये थे। महात्मा गाँधी ने इस पर बल दिया कि पंचायतें एक विशिष्ट रूप में जीवंत शक्ति बन जायेंगी एवं भारत आत्मशासी सरकार चलायेगा। फलतः स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था के रूप में पंचायत की अवधारणा राष्ट्रवादी आन्दोलन का महत्वपूर्ण मुद्दा बनी रही। ब्रिटिश काल के प्रारम्भ से ही पंचायतें स्थानीय प्रशासन की इकाई थीं परन्तु उन्हें सरकार के नियंत्रण में कार्य करना पड़ता था। जब भारतीय नेतृत्व ने राष्ट्रीय स्तर पर स्थानीय स्वशासन की मांग की तो ब्रिटिश सरकार ने सबसे निचले अथवा प्रारम्भिक स्तर पर स्वशासन की शक्तियाँ देना प्रारम्भ किया। ये स्तर थे, ग्रामीण क्षेत्र में ग्राम पंचायत और नगरीय क्षेत्र में नगर पालिका। इस हेतु विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न अधिनियम पारित किये गये। भारत शासन अधिनियम में प्रांतीय विधानमण्डलों को 'स्थानीय स्वशासन' के संदर्भ में विधान अधिनियमिता करने की शक्ति दी गई। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए कई प्रांतों ने अधिनियम पारित कर पंचायतों को प्रशासन एवं दाण्डिक न्याय

\* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.एन. (पी.जी.) कॉलेज, लखनऊ।

करने की शक्ति प्रदान की। प्रतिनिधि शासन की इकाई के रूप में इन स्थानीय निकायों के कार्यकरण में कमियों को दृष्टिगत रखते हुए स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माता इससे संतुष्ट नहीं थे। स्वतंत्र भारत के केवल 40वें अनुच्छेद में राज्य के नीति निर्देशक तत्व के रूप में पंचायतों को भारतीय संविधान में स्थान दिया गया। जिसके अनुसार— “राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ एवं प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त इकाई के रूप में कार्य करने के योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।”

यद्यपि संविधान के नीति-निर्देशक तत्व अपनी प्रकृति में सांकेतिक हैं तथापि सभी राज्यों ने पंचायती राज व्यवस्था के महत्व को स्वीकार किया है।

स्वतंत्रता के तत्काल बाद 2 अक्टूबर 1952 को ग्रामीण विकास की प्रक्रिया के रूप में सामुदायिक विकास योजना का शुभारम्भ किया गया लेकिन यह योजना जन-सहभागिता की कमी, पारदर्शिता के अभाव जैसे कारणों से पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाई। इस योजना की सीमित सफलता के कारणों को खोजने एवं मूल्यांकन हेतु सरकार ने एक अध्ययन दल “बलवंत राय मेहता कमेटी” की स्थापना की। इस कमेटी ने विकास योजनाओं में जन-सहभागिता बढ़ाने हेतु लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित संस्थाओं के निर्माण की संस्तुति की। इन्हीं संस्तुतियों के आधार पर भारत में त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का गठन किया गया। यथा— ‘ग्राम पंचायत’ गांव के स्तर पर, पंचायत समिति प्रखण्ड के स्तर पर एवं ‘जिला परिषद्’ जिले के स्तर पर। अन्य शब्दों में, परिवारों के समूह पंचायत, पंचायतों के समूह प्रखंड तथा प्रखंडों के समूह जिला परिषद् की स्थापना करते हैं। अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय विकास परिषद् ने बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों को 12 जनवरी 1958 को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के ‘नागौर’ में 2 अक्टूबर 1959 को पंचायती राज व्यवस्था का उद्घाटन

किया था। आगे चलकर इन संस्थाओं पर विचार करने एवं और अधिक प्रभावी बनाने हेतु 'अशोक मेहता समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने पंचायती राज को द्वि-स्तरीय बनाने का सुझाव 1978 में प्रस्तुत कर दिया। प्रथम, प्रारम्भिक स्तर पर मंडल पंचायत तथा दूसरा, जिला स्तर पर जिला-परिषद्। राजनीतिक अस्थिरता के कारण इस संस्तुति को लागू नहीं किया जा सका एवं त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था यथावत् लागू रही।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने एम0एल0सिंघवी की अध्यक्षता में 1986 में एक समिति का गठन किया। इसका उद्देश्य पंचायती राज व्यवस्था की जाँच करना था। इस समिति ने ग्राम सभा को पुनर्जीवित करने तथा पंचायतों के नियमित चुनाव कराने पर बल दिया। इस समिति की संस्तुतियों को भी लागू नहीं किया जा सका।

विगत दो दशकों से चली आ रही पंचायतों की इस व्यवस्था के सभी राज्यों में मूल उद्देश्य समान थे लेकिन इनके अधिकार, कार्य, चुनाव करने के तरीकों में भिन्नता विद्यमान थी, इन संस्थाओं ने शक्ति एवं अधिकार संबंधी विवादों तथा प्रतिस्पर्धाओं को जन्म दिया, यह समाज के कमजोर वर्गों को लाभ प्रदान करने में पूर्णतः सफल नहीं हो पा रही थी एवं इनका संगठनात्मक आधार भी काफी कमजोर था। पंचायतों के चुनावों में अनियमितता विद्यमान थी, इनके किसी भी प्रकार के वित्तीय अधिकार नहीं थे तथा पंचायत प्रतिनिधियों पर सरकारी अधिकारियों का अंकुश था। इस प्रकार से पंचायती राज संस्थाओं में गतिरोध व पतन दीर्घ काल तक चलता रहा। परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के नवें दशक में इन्हें पुनर्जीवित करने हेतु कदम उठाये गये।

भारतीय संविधान में 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1993 ऐसा ही एक प्रयास था। यह एक ऐतिहासिक प्रघटना थी। 73वें संशोधन अधिनियम ने पंचायतों की त्रि-स्तरीय व्यवस्था को संवैधानिक गारंटी प्रदान की। यह अधिनियम 1992 में पारित किया गया, 20 अप्रैल 1993 को इसे राष्ट्रपति ने सहमति प्रदान की एवं यह 24 अप्रैल, 1993 से प्रभावी हो गया।

यह संशोधन अधिनियम जनता को शक्ति सम्पन्न बनाने के सिद्धान्त पर आधारित है एवं पंचायतों को संवैधानिक मान्यता प्रदान करता है। यह लोकतांत्रिक-विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आश्रित है अर्थात् यह लोकतंत्र के मूल सिद्धान्तों के आधार पर संस्थाओं एवं संगठनों में निर्णय करने के अधिकार में निचले वर्ग की सहभागिता सुनिश्चित करती है। इस अधिनियम के प्रमुख पक्ष निम्नांकित हैं—

1. यह पंचायतों को स्वशासी संस्था के रूप में स्वीकारता है।
2. यह पंचायतों को सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास हेतु योजनायें बनाने एवं क्रियान्वित करने की शक्ति तथा उत्तरदायित्व प्रदान करता है।
3. यह अधिनियम 20 लाख से अधिक जनसंख्या वाले सभी राज्यों के मध्य और जिला स्तर पर समान त्रि-स्तरीय शक्ति सम्पन्न पंचायतों की स्थापना का प्रबन्ध करता है।
4. यह पंचायतों के संगठन, अधिकार, कार्यों, वित्तीय व्यवस्था, चुनावों एवं कमजोर वर्गों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति तथा महिलाओं) के लिए पंचायत के विभिन्न स्तरों पर आरक्षण की व्यवस्था करता है।

73 वाँ संविधान संशोधन अधिनियम मूलभूत लोकतंत्र की दिशा में क्रान्तिकारी कदम है जो कि पंचायतों को निश्चितता, निरन्तरता एवं शक्ति प्रदान करता है। इस संशोधन अधिनियम के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था त्रि-स्तरीय है,

1. ग्राम स्तर,
2. प्रखंड या मध्य स्तर,
3. जिला स्तर।

पंचायत के सभी स्थान प्रत्यक्ष मतदान द्वारा भरे जाते हैं। निर्वाचकों को 'ग्राम सभा' कहा जाता है। 73वें संशोधन अधिनियम के अनुसार एक पंचायती क्षेत्र में आने वाले गांवों की मतदाता-सूची में दर्ज सभी लोग 'ग्राम

सभा' के नाम से जाने जाते हैं। यह इसलिए किया जाता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना होगी। प्रत्येक पंचायत का एक अध्यक्ष होता है जिसका चुनाव राज्य द्वारा पारित विधि के अनुसार होता है। राज्य की इस विधि में संघ और राज्य के विधान मंडलों के सदस्यों (संसद सदस्य, विधान सभा तथा विधान परिषद् सदस्य) के सम्मिलित होने के बारे में उपबंध होगा। परंतु यह ग्राम स्तर से ऊपर के लिए ही होगा।

संविधान के अनुच्छेद 243—घ के अनुसार, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण होगा जो उनकी जनसंख्या के अनुपात में होगा।

प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष चुनाव से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से 1/3 स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। राज्य, विधि द्वारा किसी भी स्तर की पंचायत में नागरिकों के पिछड़े वर्गों के पक्ष में स्थानों या पदों का आरक्षण कर सकता है।

पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा। पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले चुनाव हो जाने चाहिए। यदि पंचायत का अवधि से पूर्व विघटन हो जाता है, तो विघटन से 6 मास के अंदर ही चुनाव हो जाने चाहिए।

संविधान के अनुच्छेद 243—च के अनुसार, वे सभी व्यक्ति जो राज्य विधान मंडल के लिए निर्वाचित होने की योग्यता रखते हैं पंचायत का सदस्य होने के लिए योग्य होंगे।

संविधान के अनुच्छेद 243—छ—243—ज के अनुसार, राज्य विधान मंडल को यह शक्ति है कि वे पंचायतों को ऐसी शक्ति और प्राधिकार प्रदान करें जिससे वे स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के रूप में कार्य कर सकें।

राज्य विधि द्वारा किसी पंचायत को कर, शुल्क एवं पथ कर वसूल करने एवं इकट्ठा करने का अधिकार दे सकता है। राज्य अपने द्वारा इकट्ठा किए हुए कर एवं शुल्क में से भी पंचायत को धन दे सकता है। राज्य की संचित निधि से भी पंचायत को अनुदान दिया जा सकता है।

संविधान के 73वें संशोधन के लागू होने की तारीख से एक वर्ष के भीतर और तत्पश्चात् प्रत्येक पांच वर्ष के बाद राज्य सरकार पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए वित्त आयोग की स्थापना करेगी। साथ ही वित्त आयोग की स्थापना के उद्देश्य निम्नलिखित के बारे में सिफारिश करने के लिए भी हैं: (क) ऐसे करों, शुल्कों, पथ करों और फीसों को दर्शाना जो पंचायतों को प्रदान की जा सकें, (ख) पंचायतों के लिए सहायता अनुदान, तथा (ग) पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए उपाय बताना।

संविधान के अनुच्छेद 243-ट में पंचायतों के लिए राज्य निर्वाचन आयोग के गठन का प्रावधान है। आयोग स्वतंत्र बना रहे यह सुनिश्चित करने के लिए यह प्रावधान है कि चुनाव आयुक्त को उन्हीं आधारों पर और उसी प्रक्रिया से हटाया जा सकता है जिस प्रकार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। अनुच्छेद 329 के अनुसार, चुनाव प्रक्रिया प्रारंभ हो जाने पर न्यायालय उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

73वें संविधान संशोधन विधेयक के बाद 11वीं अनुसूची बढ़ाई गई, जिसके अन्तर्गत निम्न विषयों या मदों को सम्मिलित किया गया:

1. कृषि एवं कृषि-विस्तार (agricultural extension)।
2. भू-सुधार, भूमि सुधार कार्यक्रमों का क्रियान्वयन, भूमि चकबन्दी (land consolidation) और भूसंरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबंध, जल संचय कार्यक्रम
4. पशुपालन, डेयरी और मुर्गीपालन
5. मछली पालन
6. सामाजिक वानिकी और कृषि वानिकी
7. लघु वन उत्पाद
8. लघु उद्योग जिसमें खाद्य प्रसंस्करण उद्योग (food processing industry) भी शामिल है,
9. खादी, ग्रामीण और कुटीर उद्योग

10. ग्रामीण गृह—व्यवस्था (rural housing)
11. पेयजल
12. ईंधन और चारा
13. सड़कें, पुल जल—परिवहन और संचार के अन्य साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण जिसमें विद्युत वितरण भी शामिल है,
15. गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत
16. गरीबी—उन्मूलन कार्यक्रम
17. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा
18. तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा
20. पुस्तकालय
21. सांस्कृतिक कार्यक्रम और गतिविधियाँ
22. बाजार और मेले
23. स्वास्थ्य और सफाई कार्यक्रम जिसमें अस्पताल, स्वास्थ्य केन्द्र और डिस्पेंसरी भी शामिल हैं
24. परिवार कल्याण महिला और बाल कल्याण
25. महिला और बाल कल्याण
26. सामाजिक—कल्याण जिसमें विकलांग कल्याण और मानसिक रुग्णता वाले लोग भी सम्मिलित है।
27. पिछड़े और कमजोर तबकों का विकास विशेषतः अनुसूचित जाति / जनजाति।
28. सार्वजनिक वितरण व्यवस्था
29. सामुदायिक सम्पत्तियों (community assets) की देखभाल  
1993 के संवैधानिक संशोधन के बाद बहुत से राज्यों ने संविधान की 11वीं अनुसूची में दर्ज इन 29 कार्यों में से कई स्थानान्तरित (delegate) कर दिये। यद्यपि कार्यों का स्थानान्तरण तो अधिकांश राज्यों में हो गया, किन्तु फंड का स्थानान्तरण कुछ ही राज्यों में हुआ।

साराँशतः कहा जा सकता है कि भारत में पंचायती राज व्यवस्था का विकास एक दीर्घ कालिक प्रक्रिया के रूप में हुआ है। यद्यपि पंचायतों के आदर्श प्राचीन काल से विद्यमान थे तथापि 73वें संशोधन ने उन्हें और अधिक व्यावहारिक एवं सशक्त बनाया है।

**संदर्भ —**

1. बसु, डी0डी0: 1999, भारत का संविधान—एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर।
2. भारत: 2012, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
3. ग्रोवर, बी0एल0 एवं यशपाल: 1999, आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली।
4. कश्यप, सुभाष: 1997, भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली।





## सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत / संस्थागत

प्रति अंक	—	300 / 500
पांच वर्ष	—	1,200 / 2,000
आजीवन	—	3,000 / 5,000

## सदस्यता पत्रक

सम्पादक,

‘वीथिका’

प्रिय महोदय,

मैं राष्ट्रीय वार्षिक अनुसंधान पत्रिका वीथिका का व्यक्तिगत / संस्थागत ( ), वार्षिक सदस्य ( ), / त्रिवर्षीय सदस्य ( ), / आजीवन सदस्य ( ) बनना चाहता / चाहती हूँ। अतः मैं अपना सदस्यता शुल्क रुपये ..... (अंकों में) / ..... (शब्दों में) नकद / चेक / मनी ऑर्डर / बैंक ड्राफ्ट संख्या ..... द्वारा दिनांक ..... को भेज रहा / रही हूँ।

नाम .....

पद नाम .....

पत्रिका भेजने का पता .....

.....

दूरभाष / मो0 .....

नाम व हस्ताक्षर

नोट –

✍ कृपया समस्त भुगतान ‘सम्पादक वीथिका, लखनऊ’ के नाम करें। लखनऊ के बाहर के चेक में Rs. 100 अतिरिक्त जोड़ें।

✍ सदस्यता पत्रक की छाया प्रति भी स्वीकार्य है।









